विश्वपूज्य प्रभु श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरि शताब्दि-दशाब्दि
महोत्सव के उपलक्ष्य में चतुर्थ खण्ड

अभिधान राजेन्द्र कोष में,

सूक्ति-सुधारस

चतुर्थ खण्ड

दिव्याशीष प्रदाता :
परम पूज्य, परम कृपालु, विश्वपूज्य
प्रभुश्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा.

आशीषप्रदाता :
राष्ट्रसन्त वर्तमानाचार्यदेवेश
श्रीमद्विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी म. सा.

प्रेरिका :
प. पू. वयोवृद्धा सरलस्वभाविनी
साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. सा.

लेखिका :
साध्वी डॉ. प्रियदर्शनाश्री,
(एम. ए. पीएच-डी.)
साध्वी डॉ. सुदर्शनाश्री,
(एम. ए. पीएच-डी.)

सुकृत सहयोगिनी
श्री राजेन्द्र जैन महिला मण्डल, भीनमाल (राज.)
जिला-जालोर

प्राप्ति स्थान
श्री मदनराजजी जैन
द्वारा – शा. देवीचन्दजी छगनलालजी
आधुनिक वस्त्र विक्रेता
सदर बाजार, भीनमाल-३४३०२९
फोन : (०२९६९) २०१३२

प्रथम आवृत्ति
वीर सम्वत् : २५२५
राजेन्द्र सम्वत् : ९२
विक्रम सम्वत् : २०५५
ईस्वी सन् : १९९८
मूल्य : ५०-००
प्रतियाँ : २०००

अक्षराङ्कन
लेखित
१०, रूपमाधुरी सोसायटी, माणेकबाग, अहमदाबाद-१५

मुद्रण
सर्वोदय ओफसेट
प्रेमदरवाजा बहार, अहमदाबाद.

अनुक्रम

कहाँ क्या ?



वि[illegible]य
श्रीमद्विजय [illegible]रजी म



पू. राष्ट्रसन्त आचार्य श्रीमद्
विजय जयन्तसेन सूरीश्वरजी म. सा.



परम पूज्या सरलस्वभाविनी साध्वीरत्ना
श्री महाप्रभाश्रीजी म. सा.

1

समर्पण

रवि-प्रभा सम है मुखश्री, चन्द्र सम अति प्रशान्त ।
तिमिर में भटके जनके, दीप उज्जवल कान्त ॥ १ ॥

लघुता में प्रभुता भरी, विश्व-पूज्य मुनीन्द्र ।
करुणा सागर आप थे, यति के बने यतीन्द्र ॥ २ ॥

लोक-मंगली थे कमल, योगीश्वर गुरुराज ।
सुमन-माल सुन्दर सजी, करे समर्पण आज ॥ ३ ॥

अभिधान राजेन्द्र कोष, रचना रची ललाम ।
नित चरणों में आपके, विधियुत् करें प्रणाम ॥ ४ ॥

काव्य-शिल्प समझें नहीं, फिर भी किया प्रयास ।
गुरु-कृपा से यह बने, जन-मन का विश्वास ॥ ५ ॥

प्रियदर्शना की दर्शना, सुदर्शना भी साथ ।
राज रहे राजेन्द्र का, चरण झुकाते माथ ॥ ६ ॥

- श्री राजेन्द्रगुणगीतवेणु

- श्री राजेन्द्रपदपद्मरेणु

साध्वी प्रियदर्शनाश्री

साध्वी सुदर्शनाश्री

2



विश्वविश्रुत है

श्री अभिधान राजेन्द्र कोष।

विश्व की आश्चर्यकारक घटना है।

साधन दुर्लभ समय में इतना सारा संगठन, संकलन अपने आप में एक अलौकिक सा प्रतीत होता है। रचनाकार निर्माता ने वर्षों तक इस कोष प्रणयन का चिन्तन किया, मनोयोगपूर्वक मनन किया, पश्चात् इस भगीरथ कार्य को संपादित करने का समायोजन किया।

महामंत्र नवकार की अगाध शक्ति ! कौन कह सकता है शब्दों में उसकी शक्ति को। उस महामंत्र में उनकी थी परम श्रद्धा सह अनुरक्ति एवं सम्पूर्ण समर्पण के साथ उनकी थी परम भक्ति!

इस त्रिवेणी संगम से संकल्प साकार हुआ एवं शुभारंभ भी हो गया। १४ वर्षों की सतत साधना के बाद निर्मित हुआ यह अभिधान राजेन्द्र कोष।

इसमें समाया है सम्पूर्ण जैन वाङ्मय या यों कहें कि जैन वाङ्मय का प्रतिनिधित्व करता है यह कोष। अंगोपांग से लेकर मूल, प्रकीर्णक, छेद ग्रन्थों के सन्दर्भों से समलंकृत है यह विराट्काय ग्रन्थ।

इस बृहद् विश्वकोष के निर्माता हैं परम योगीन्द्र सरस्वती पुत्र, समर्थ शासनप्रभावक , सत्क्रिया पालक, शिथिलाचार उन्मूलक, शुद्धसनातन सन्मार्ग प्रदर्शक जैनाचार्य विश्वपूज्य प्रातः स्मरणीय प्रभु श्रीमद् विजय राजेन्द्र सूरीश्वरजी महाराजा !

सागर में रत्नों की न्यूनता नहीं। 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' यह कोष भी सागर है जो गहरा है, अथाह है और अपार है। यह ज्ञान सिंधु नाना प्रकार की सूक्ति रत्नों का भंडार है।

इस ग्रन्थराज ने जिज्ञासुओं की जिज्ञासा शान्त की। मनीषियों की मनीषा में अभिवृद्धि की।

इस महासागर में मुक्ताओं की कमी नहीं। सूक्तियों की श्रेणिबद्ध पंक्तियाँ प्रतीत होती हैं।

प्रस्तुत पुस्तक है जन-जन के सम्मुख 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (१ से ७ खण्ड)।

मेरी आज्ञानुवर्तिनी विदुषी सुसाध्वी श्री डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं सुसाध्वीश्री डॉ. सुदर्शनाश्रीजी ने अपनी गुरुभक्ति को प्रदर्शित किया है इस 'सूक्ति-सुधारस' को आलेखित करके। गुरुदेव के प्रति संपूर्ण समर्पित उनके भाव ने ही यह अनूठा उपहार पाठकों के सम्मुख रखने को प्रोत्साहित किया है उनको।

यह 'सूक्ति-सुधारस' (१ से ७ खण्ड) जिज्ञासु जनों के लिए अत्यन्त ही सुन्दर है। 'गागर में सागर है'। गुरुदेव की अमर कृति कालजयी कृति है, जो उनकी उत्कृष्ट त्याग भावना की सतत अप्रमत्त स्थिति को उजागर करनेवाली कृति है। निरन्तर ज्ञान-ध्यान में लीन रहकर तपोधनी गुरुदेवश्री 'महतो महियान्' पद पर प्रतिष्ठित हो गए हैं; उन्हें कषायों पर विजयश्री प्राप्त करने में बड़ी सफलता मिली और वे बीसवीं शताब्दि के सदा के लिए संस्मरणीय परमश्रेष्ठ पुरुष बन गए हैं।

प्रस्तुत कृति की लेखिका डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी अभिनन्दन की पात्रा हैं, जो अहर्निश 'अभिधान राजेन्द्र कोष' के गहरे सागरमें गोते लगाती रहती हैं। 'जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पेठ' की उक्ति के अनुसार श्रम, समय, मन-मस्तिष्क सभी को सार्थक किया है श्रमणी द्वयने।

मेरी ओर से हार्दिक अभिनंदन के साथ खूब-खूब बधाई इस कृति की लेखिका साध्वीद्वय को। वृद्धि हो उनकी इस प्रवृत्ति में, यही आकांक्षा।

राजेन्द्र सूरि जैन ज्ञानमंदिर — *- विजय जयन्तसेन सूरि*
अहमदाबाद
दि. २९-४-९८ अक्षय तृतीया



3

मंगल कामना

विदुषी डॉ. साध्वीश्री प्रिय-सुदर्शनाश्रीजीम. आदि,

अनुवंदना सुखसाता ।

आपके द्वारा प्रेषित 'विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्रसूरिः जीवन-सौरभ), 'अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) एवं 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका' की पाण्डुलिपियाँ मिली हैं । पुस्तकें सुंदर हैं । आपकी श्रुत भक्ति अनुमोदनीय है । आपका यह लेखनश्रम अनेक व्यक्तियों के लिये चित्त के विश्राम का कारण बनेगा, ऐसा मैं मानता हूँ । आगमिक साहित्य के चिंतन स्वाध्याय में आपका साहित्य मददगार बनेगा।

उत्तरोत्तर साहित्य क्षेत्र में आपका योगदान मिलता रहे, यही मंगल कामना करता हूँ ।

उदयपुर
14-5-98

पद्मसागरसूरि
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
कोबा-382009 (गुज.)



4

रस-पूर्ति

जिनशासन में स्वाध्याय का महत्त्व सर्वाधिक है। जैसे देह प्राणों पर आधारित है वैसे ही जिनशासन स्वाध्याय पर। आचार-प्रधान ग्रन्थों में साधु के लिए पन्द्रह घंटे स्वाध्याय का विधान है। निद्रा, आहार, विहार एवं निहार का जो समय है वह भी स्वाध्याय की व्यवस्था को सुरक्षित रखने के लिए है अर्थात् जीवन पूर्ण रूप से स्वाध्यायमय ही होना चाहिए ऐसा जिनशासन का उद्घोष है। वाचना, पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा इन पाँच प्रभेदों से स्वाध्याय के स्वरूप को दर्शाया गया है, इनका क्रम व्यवस्थित एवं व्यावहारिक है।

श्रमण जीवन एवं स्वाध्याय ये दोनों-दूध में शक्कर की मीठास के समान एकमेक हैं। वास्तविक श्रमण का जीवन स्वाध्यायमय ही होता है। क्षमाश्रमण का अर्थ है 'क्षमा के लिए श्रम रत' और क्षमा की उपलब्धि स्वाध्याय से ही प्राप्त होती है। स्वाध्याय हीन श्रमण क्षमाश्रमण हो ही नहीं सकता। श्रमण वर्ग आज स्वाध्याय रत हैं और उसके प्रतिफल रूप में अनेक साधु-साध्वी आगमज्ञ बने हैं।

प्रातःस्मरणीय विश्व पूज्य श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा ने अभिधान राजेन्द्र कोष के सप्त भागों का निर्माण कर स्वाध्याय का सुफल विश्व को भेंट किया है।

उन सात भागों का मनन चिन्तन कर विदुषी साध्वीरत्नाश्री महाप्रभाश्रीजीम. की विनयरत्ना साध्वीजी श्री डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. श्री सुदर्शनाश्रीजी ने " अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस" को सात खण्डों में निर्मित किया हैं जो आगमों के अनेक रहस्यों के मर्म से ओतप्रोत हैं।

साध्वी द्वय सतत स्वाध्याय मग्ना हैं, इन्हें अध्ययन एवं अध्यापन का इतना रस है कि कभी-कभी आहार की भी आवश्यकता नहीं रहती। अध्ययन-अध्यापन का रस ऐसा है कि जो आहार के रस की भी पूर्ति कर देता है।

'सूक्ति सुधारस' (१ से ७ खण्ड) के माध्यम से इन्होंने प्रवचनसेवा, दादागुरुदेव श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा के वचनों की सेवा, तथा संघ-सेवा का अनुपम कार्य किया है।

'सूक्ति सुधारस' में क्या है ? यह तो यह पुस्तक स्वयं दर्शा रही है। पाठक गण इसमें दर्शित पथ पर चलना प्रारंभ करेंगे तो कषाय परिणति का ह्रास होकर गुणश्रेणी पर आरोहण कर अति शीघ्र मुक्ति सुख के उपभोक्ता बनेंगे; यह निस्संदेह सत्य है ।

साध्वी द्वय द्वारा लिखित ये 'सात खण्ड' भव्यात्मा के मिथ्यात्वमल को दूर करने में एवं सम्यग्दर्शन प्राप्त करवाने में सहायक बनें, यही अंतराभिलाषा.

भीनमाल
वि. संवत् २०५५, वैशाख वदि १० *मुनि जयानंद*





लगभग दस वर्ष पूर्व जालोर - स्वर्णगिरितीर्थ - विश्वपूज्य की साधना स्थली पर हमनें 36 दिवसीय अखण्ड मौनपूर्वक आयम्बिल व जप के साथ आराधना की थी, उस समय हमारे हृदय-मन्दिर में विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्र सूरीश्वरजी गुरुदेव श्री की भव्यतम प्रतिमा प्रतिष्ठित हुई, जिसके दर्शन कर एक चलचित्र की तरह हमारे नयन-पट पर गुरुवर की सौम्य, प्रशान्त, करुणार्द्र और कोमल भावमुद्रा सहित मधुर मुस्कान अंकित हो गई। फिर हमें उनके एक के बाद एक अभिधान राजेन्द्र कोष के सप्त भाग दिखाई दिए और उन ग्रन्थों के पास एक दिव्य महर्षि की नयन रम्य छवि जगमगाने लगी। उनके नयन खुले और उन्होंने आशीर्वाद मुद्रा में हमें संकेत दिए! और हम चित्र लिखित-सी रह गईं। तत्पश्चात् आँखें खोली तो न तो वहाँ गुरुदेव थे और न उनका कोष। तभी से हम दोनों ने दृढ़ संकल्प किया कि हम विश्वपूज्य एवं उनके द्वारा निर्मित कोष पर कार्य करेंगी और जो कुछ भी मधु-सञ्चय होगा, वह जनता-जनार्दन को देंगी! विश्वपूज्य का सौरभ सर्वत्र फैलाएँगी। उनका वरदान हमारे समस्त ग्रन्थ-प्रणयन की आत्मा है।

16 जून, सन् 1989 के शुभ दिन 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में, 'सूक्ति-सुधारस' के लेखन -कार्य का शुभारम्भ किया।

वस्तुतः इस ग्रन्थ-प्रणयन की प्रेरणा हमें विश्वपूज्य गुरुदेवश्री की असीम कृपा-वृष्टि, दिव्याशीर्वाद, करुणा और प्रेम से ही मिली है।

'सूक्ति' शब्द सु + उक्ति इन दो शब्दों से निष्पन्न है। सु अर्थात् श्रेष्ठ और उक्ति का अर्थ है कथन। सूक्ति अर्थात् सुकथन। सुकथन जीवन को सुसंस्कृत एवं मानवीय गुणों से अलंकृत करने के लिए उपयोगी है। सैकड़ों दलीलें एक तरफ और एक चुटैल सुभाषित एक तरफ। सुत्तनिपात में कहा है —

'विञ्ञात सारानि सुभासितानि' [1]

सुभाषित ज्ञान के सार होते हैं। दार्शनिकों, मनीषियों, संतों, कवियों तथा साहित्यकारों ने अपने सद्ग्रन्थों में मानव को जो हितोपदेश दिया है तथा

1. सुत्तनिपात - 2/21-6

महर्षि-ज्ञानीजन अपने प्रवचनों के द्वारा जो सुवचनामृत पिलाते हैं - वह संजीवनी औषधितुल्य है ।

निःसंदेह सुभाषित, सुकथन या सूक्तियाँ उत्प्रेरक, मार्मिक, हृदयस्पर्शी, संक्षिप्त, सारगर्भित अनुभूत और कालजयी होती हैं । इसीकारण सुकथनों / सूक्तियों का विद्युत्-सा चमत्कारी प्रभाव होता है । सूक्तियों की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए महर्षि वशिष्ठ ने योगवाशिष्ठ में कहा है – "महान् व्यक्तियों की सूक्तियाँ अपूर्व आनन्द देनेवाली, उत्कृष्टतर पद पर पहुँचानेवाली और मोह को पूर्णतया दूर करनेवाली होती हैं ।"[1] यही बात शब्दान्तर में आचार्य शुभचन्द्र ने ज्ञानार्णव में कही है – "मनुष्य के अन्तर्हृदय को जगाने के लिए, सत्यासत्य के निर्णय के लिए, लोक-कल्याण के लिए, विश्व-शान्ति और सम्यक् तत्त्व का बोध देने के लिए सत्पुरुषों की सूक्ति का प्रवर्तन होता है ।" [2]

सुवचनों, सुकथनों को धरती का अमृतरस कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी । कालजयी सूक्तियाँ वास्तव में अमृतरस के समान चिरकाल से प्रतिष्ठित रही हैं और अमृत के सदृश ही उन्होंने संजीवनी का कार्य भी किया है । इस संजीवनी रस के सेवन मात्र से मृतवत् मूर्ख प्राणी, जिन्हें हम असल में मरे हुए कहते हैं, जीवित हो जाते हैं, प्राणवान् दिखाई देने लगते हैं । मनीषियों का कथन हैं कि जिसके पास ज्ञान है, वही जीवित है, जो अज्ञानी है वह तो मरा हुआ ही होता है । इन मृत प्राणियों को जीवित करने का अमृत महान् ग्रन्थ अभिधान-राजेन्द्र कोष में प्राप्त होगा । शिवलीलार्णव में कहा है – "जिस प्रकार बालू में पड़ा पानी वहीं सूख जाता है, इसीप्रकार संगीत भी केवल कान तक पहुँचकर सूख जाता है, किन्तु कवि की सूक्ति में ही ऐसी शक्ति है, कि वह सुगन्धयुक्त अमृत के समान हृदय के अन्तस्तल तक पहुँचकर मन को सदैव आह्लादित करती रहती है । [3] इसीलिए 'सुभाषितों का रस अन्य रसों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है ।' [4] अमृतरस छलकाती ये सूक्तियाँ अन्तस्तल

---

1 अपूर्वाह्लाद दायिन्यः उच्चैस्तर पदाश्रयाः ।
अतिमोहापहारिण्यः सूक्तयो हि महियसाम् ॥
योगवाशिष्ठ 5/4 5

2 प्रबोधाय विवेकाय, हिताय प्रशमाय च ।
सम्यक् तत्त्वोपदेशाय, सतां सूक्ति प्रवर्तते ॥
ज्ञानार्णव

3 कर्णगतं शुष्यति कर्ण एव, संगीतकं सैकत वारिरीत्या ।
आनन्दयत्यन्तरनुप्रविष्य. सूक्ति कवे रेव सुधा सगन्धा ॥ – शिवलीलार्णव

4 नूनं सुभाषित रसोन्यः रसातिशायी – योग वाशिष्ठ 5 4/5

को स्पर्श करती हुई प्रतीत होती है। वस्तुतः जीवन को सुरभित व सुशोभित करनेवाला सुभाषित एक अनमोल रत्न है।

सुभाषित में जो माधुर्य रस होता है, उसका वर्णन करते हुए कहा है – "सुभाषित का रस इतना मधुर [मीठा] है कि उसके आगे द्राक्षा म्लानमुखी हो गई। मिश्री सूखकर पत्थर जैसी किरकिरी हो गई और सुधा भयभीत होकर स्वर्ग में चली गई।" [1]

अभिधान राजेन्द्र कोष की ये सूक्तियाँ अनुभव के 'सार' जैसी, समुद्र-मन्थन के 'अमृत' जैसी, दधि-मन्थन के 'मक्खन' जैसी और मनीषियों के आनन्ददायक 'साक्षात्कार' जैसी "देखन में छोटे लगे, घाव करे गम्भीर" की उक्ति को चरितार्थ करती हैं। इनका प्रभाव गहन हैं। ये अन्तर ज्योति जगाती हैं।

वास्तव में, अभिधान राजेन्द्र कोष एक ऐसी अमरकृति है, जो देश-विदेश में लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी है। यह एक ऐसा विराट् शब्द-कोष है, जिसमें परम मधुर अर्धमागधी भाषा, इक्षुरस के समान पुष्टिकारक प्राकृतभाषा और अमृतवर्षिणी संस्कृत भाषा के शब्दों का सरस व सरल निरुपण हुआ है।

विश्वपूज्य परमाराध्यपाद मंगलमूर्ति गुरुदेव श्रीमद् राजेन्द्र-सूरीश्वरजी महाराजा साहेब पुरातन ऋषि परम्परा के महामुनीश्वर थे, जिनका तपोबल एवं ज्ञान-साधना अनुपम, अद्वितीय थी। इस प्रज्ञामहर्षि ने सन् 1890 में इस कोष का श्रीगणेश किया तथा सात भागों में 14 वर्षों तक अपूर्व स्वाध्याय, चिन्तन एवं साधना से सन् 1903 में परिपूर्ण किया। लोक-मङ्गल का यह कोष सुधा-सिन्धु है।

इस कोष में सूक्तियों का निरुपण-कौशल पण्डितों, दार्शनिकों और साधारण जनता-जनार्दन के लिए समान उपयोगी है।

इस कोष की महनीयता को दर्शाना सूर्य को दीपक दिखाना है।

हमने अभिधान राजेन्द्र कोष की लगभग 2700 सूक्तियों का हिन्दी सरलार्थ प्रस्तुत कृति 'सूक्ति सुधारस' के सात खण्डों में किया है।

'सूक्ति सुधारस' अर्थात् अभिधान राजेन्द्र-कोष-सिन्धु के मन्थन से निःसृत अमृत-रस से गूँथा गया शाश्वत सत्य का वह भव्य गुलदस्ता है, जिसमें 2667 सुकथनों/सूक्तियों की मुस्कराती कलियाँ खिली हुई हैं।

ऐसे विशाल और विराट् कोष-सिन्धु की सूक्ति रूपी मणि-रत्नों को

---

1 द्राक्षाम्लानमुखी जाता, शर्करा चाश्मतां गता,
सुभाषित रसस्याग्रे, सुधा भीता दिवंगता ॥

खोजना कुशल गोताखोर से सम्भव है। हम निपट अज्ञानी हैं — न तो साहित्य-विभूषा को जानती हैं, न दर्शन की गरिमा को समझती हैं और न व्याकरण की बारीकी समझती हैं, फिर भी हमने इस कोष के सात भागों की सूक्तियों को सात खण्डों में व्याख्यायित करने की बालचेष्टा की है। यह भी विश्वपूज्य के प्रति हमारी अखण्ड भक्ति के कारण।

हमारा बाल प्रयास केवल ऐसा ही है —

वक्तुं गुणान् गुण समुद्र ! शशाङ्ककान्तान् ।
कस्ते क्षमः सुरगुरु प्रतिमोऽपि बुद्ध्या
कल्पान्त काल पवनोद्धत नक्र चक्रं ।
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥

हमने अपनी भुजाओं से कोष रूपी विशाल समुद्र को तैरने का प्रयास केवल विश्व-विभु परम कृपालु गुरुदेवश्री के प्रति हमारी अखण्ड श्रद्धा और प.पू. परमाराध्यपाद प्रशान्तमूर्ति कविरत्न आचार्य देवेश श्रीमद् विजय विद्याचन्द्र-सूरीश्वरजी म.सा. तत्पट्टालंकार प. पूज्यपाद साहित्यमनीषी राष्ट्रसन्त श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी महाराजा साहेब की असीमकृपा तथा परम पूज्या परमोपकारिणी गुरुवर्या श्री हेतश्रीजी म.सा. एवं परम पूज्या सरलस्वभाविनी स्नेह-वात्सल्यमयी साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. सा. [हमारी सांसारिक पूज्या दादीजी] की प्रीति से किया है। जो कुछ भी इसमें हैं, वह इन्हीं पञ्चमूर्ति का प्रसाद है।

हम प्रणत हैं उन पंचमूर्ति के चरण कमलों में, जिनके स्नेह-वात्सल्य व आशीर्वचन से प्रस्तुत ग्रन्थ साकार हो सका है।

हमारी जीवन-क्यारी को सदा सींचनेवाली परम श्रद्धेया [हमारी संसारपक्षीय दादीजी] पूज्यवर्या श्री के अनन्य उपकारों को शब्दों के दायरे में बाँधने में हम असमर्थ हैं। उनके द्वारा प्राप्त अमित वात्सल्य व सहयोग से ही हमें सतत ज्ञान-ध्यान, पठन-पाठन, लेखन व स्वाध्यायादि करने में हरतरह की सुविधा रही है। आपके इन अनन्त उपकारों से हम कभी भी उऋण नहीं हो सकतीं।

हमारे पास इन गुरुजनों के प्रति आभार-प्रदर्शन करने के लिए न तो शब्द है, न कौशल है, न कला है और न ही अलंकार! फिर भी हम इनकी करुणा, कृपा और वात्सल्य का अमृतपान कर प्रस्तुत ग्रंथ के आलेखन में सक्षम बन सकी हैं।

हम उनके पद-पद्मों में अनन्यभावेन समर्पित हैं, नतमस्तक हैं।

इसमें जो कुछ भी श्रेष्ठ और मौलिक है, उस गुरु-सत्ता के शुभाशीष का ही यह शुभ फल है ।

विश्वपूज्य प्रभु श्रीमद् राजेन्द्रसूरि शताब्दि-दशाब्दि महोत्सव के उपलक्ष्य में अभिधान राजेन्द्र कोष के सुगन्धित सुमनों से श्रद्धा-भक्ति के स्वर्णिम धागे से गूंथी यह चतुर्थ सुमनमाला उन्हें पहना रही हैं, विश्वपूज्य प्रभु हमारी इस नन्हीं माला को स्वीकार करें ।

हमें विश्वास है यह श्रद्धा-भक्ति-सुमन जन-जीवन को धर्म, नीति-दर्शन-ज्ञान-आचार, राष्ट्रधर्म, आरोग्य, उपदेश, विनय-विवेक, नम्रता, तप-संयम, सन्तोष-सदाचार, क्षमा, दया, करुणा, अहिंसा-सत्य आदि की सौरभ से महकाता रहेगा और हमारे तथा जन-जन के आस्था के केन्द्र विश्वपूज्य की यशः सुरभि समस्त जगत् में फैलाता रहेगा ।

इस ग्रन्थ में त्रुटियाँ होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि हर मानव कृति में कुछ न कुछ त्रुटियाँ रह ही जाती हैं । इसीलिए लेनिन ने ठीक ही कहा है : **त्रुटियाँ तो केवल उसी से नहीं होगी जो कभी कोई काम करे ही नहीं ।**

गच्छतः स्खलनं क्वापि, भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र, समादधति सज्जनाः ॥

– श्री राजेन्द्रगुणगीतवेणु
– श्री राजेन्द्रपदपद्मरेणु
डॉ. प्रियदर्शनाश्री, एम. ए., पीएच.-डी.
डॉ. सुदर्शनाश्री, एम. ए., पीएच.-डी.



हम परम पूज्य राष्ट्रसन्त आचार्यदेव श्रीमद् जयन्तसेन सूरीश्वरजी म. सा. "मधुकर", परम पूज्य राष्ट्रसन्त आचार्यदेव श्रीमद् पद्मसागर सूरीश्वरजी म. सा. एवं प. पू. मुनिप्रवर श्री जयानन्द विजयजी म. सा. के चरण कमलों में वंदना करती हैं, जिन्होंने असीम कृपा करके अपने मन्तव्य लिखकर हमें अनुगृहीत किया है। हमें उनकी शुभप्रेरणा व शुभाशीष सदा मिलती रहे, यही करबद्ध प्रार्थना है।

इसके साथ ही हमारी सुविनीत गुरुबहनें सुसाध्वीजी श्री आत्मदर्शनाश्रीजी, श्रीसम्यग्दर्शनाश्रीजी (सांसारिक सहोदरबहनें), श्री चारूदर्शनाश्रीजी एवं श्री प्रीतिदर्शनाश्रीजी (एम.ए.) की शुभकामना का सम्बल भी इस ग्रन्थ के प्रणयन में साथ रहा है। अतः उनके प्रति भी हृदय से आभारी हैं।

हम पद्म विभूषण, पूर्व भारतीय राजदूत ब्रिटेन, विश्वविख्यात विधिवेत्ता एवं महान् साहित्यकार माननीय डॉ. श्रीमान् लक्ष्मीमल्लजी सिंघवी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हैं, जिन्होंने अति भव्य मन्तव्य लिखकर हमें प्रेरित किया है। तदर्थ हम उनके प्रति हृदय से अत्यन्त आभारी हैं।

इस अवसर पर हिन्दी-अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध मनीषी सरलमना माननीय डॉ. श्री जवाहरचन्द्रजी पटनी का योगदान भी जीवन में कभी नहीं भुलाया जा सकता है। पिछले दो वर्षों से सतत उनकी यही प्रेरणा रही कि आप शीघ्रातिशीघ्र 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' [1 से 7 खण्ड], 'अभिधान राजेन्द्र कोष में जैनदर्शन वाटिका', 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, कथा-कुसुम' और 'विश्वपूज्य' (श्रीमद राजेन्द्रसूरिः जीवन-सौरभ) आदि ग्रन्थों को सम्पन्न करें। उनकी सक्रिय प्रेरणा, सफल निर्देशन, सतत प्रोत्साहन व आत्मीयतापूर्ण सहयोग-सुझाव के कारण ही ये ग्रन्थ [1 से 10 खण्ड] यथासमय पूर्ण हो सके हैं। पटनी सा0 ने अपने अमूल्य क्षणों का सदुपयोग प्रस्तुत ग्रन्थ के अवलोकन में किया। हमने यह अनुभव किया कि देहयष्टि वार्धक्य के कारण कृश होती है, परन्तु आत्मा अजर अमर है। गीता में कहा है :

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारूतः ॥
कर्मयोगी का यही अमर स्वरूप है ।

हम साध्वीद्वय उनके प्रति हृदय से कृतज्ञा हैं । इतना ही नहीं, अपितु प्रस्तुत ग्रन्थों के अनुरूप अपना आमुख लिखने का कष्ट किया तदर्थ भी हम आभारी हैं।

उनके इस प्रयास के लिए हम धन्यवाद या कृतज्ञता ज्ञापन कर उनके अमूल्य श्रम का अवमूल्यन नहीं करना चाहतीं । बस, इतना ही कहेंगी कि इस सम्पूर्ण कार्य के निमित्त उन्हें ज्ञान के इस अथाह सागर में बार-बार डुबकियाँ लगाने का जो सुअवसर प्राप्त हुआ, वह उनके लिए महान् सौभाग्य है।

तत्पश्चात् अनवरत शिक्षा के क्षेत्र में सफल मार्गदर्शन देनेवाले शिक्षा गुरुजनों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन करना हमारा परम कर्तव्य है । बी. ए. [प्रथम खण्ड] से लेकर आजतक हमारे शोध निर्देशक माननीय डॉ. श्री अखिलेशकुमारजी राय सा. द्वारा सफल निर्देशन, सतत प्रोत्साहन एवं निरन्तर प्रेरणा को विस्मृत नहीं किया जा सकता, जिसके परिणाम स्वरूप अध्ययन के क्षेत्र में हम प्रगतिपथ पर अग्रसर हुईं । इसी कड़ी में श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान वाराणसी के निदेशक माननीय डॉ. श्री सागरमलजी जैन के द्वारा प्राप्त सहयोग को भी जीवन में कभी भी भुलाया नहीं जा सकता, क्योंकि पार्श्वनाथ विद्याश्रम के परिसर में सालभर रहकर हम साध्वी द्वय ने 'आचारांग का नीतिशास्त्रीय अध्ययन' और 'आनन्दघन का रहस्यवाद' — इन दोनों शोध-प्रबन्ध-ग्रन्थों को पूर्ण किया था, जो पीएच.डी. की उपाधि के लिए अवधेश प्रतापसिंह विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र) ने स्वीकृत किये । इन दोनों शोध-प्रबन्ध ग्रन्थों को पूर्ण करने में डॉ. जैन सा. का अमूल्य योगदान रहा है। इतना ही नहीं, प्रस्तुत ग्रन्थों के अनुरूप मन्तव्य लिखने का कष्ट किया। तदर्थ भी हम आभारी हैं।

इनके अतिरिक्त विश्रुत पण्डितवर्य माननीय श्रीमान् दलसुख भाई मालवणियाजी, विद्वद्वर्य डॉ. श्री नेमीचन्दजी जैन, शास्त्रसिद्धान्त रहस्यविद् ? पण्डितवर्य श्री गोविन्दरामजी व्यास, विद्वद्वर्य पं. श्री जयनन्दनजी झा, पण्डितवर्य श्री हीरालालजी शास्त्री एम.ए., हिन्दी अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध मनीषी श्री भागचन्दजी जैन, एवं डॉ. श्री अमृतलालजी गाँधी ने भी मन्तव्य लिखकर स्नेहपूर्ण उदारता दिखाई, तदर्थ हम उन सबके प्रति भी हृदय से अत्यन्त आभारी हैं ।

अन्त में उन सभी का आभार मानती हैं जिनका हमें प्रत्यक्ष व परोक्ष सहकार / सहयोग मिला है ।

यह कृति केवल हमारी बालचेष्टा है, अतः सुविज्ञ, उदारमना सज्जन हमारी त्रुटियों के लिए क्षमा करें ।

पौष शुक्ला सप्तमी — *डॉ. प्रियदर्शनाश्री*

5 जनवरी, 1998 — *डॉ. सुदर्शनाश्री*

सुकृत सहयोगिनी

श्रुतज्ञानानुरागिणी श्राविका रत्न, भीनमाल,

भारतीय संस्कृति में नारी की गरिमा के लिए मनुस्मृति का यह कथन अक्षरशः सत्य है :

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते
रमन्ते तत्र देवताः ।

यथार्थ में श्री राजेन्द्र जैन महिला मंडल, भीनमाल की श्रुतज्ञान के प्रति रूचि अनुमोदनीय है, उसी का दिव्यफल है इस पुस्तक का प्रकाशन । इस सुकृत में सहयोग देकर महिला मण्डल ने नारी महिमा को अक्षुण्ण रखा है । वे "अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति सुधारस" (चतुर्थ खंड) का प्रकाशन करवा रही हैं । उनकी विद्यानुरागिता की हम भूरिभूरि प्रशंसा करती हैं ।

दर्शन पाहुड में कहा है :

नाणं णरस्स सारो ।

ज्ञान मनुष्यजीवन का सार है । ज्ञान मनुष्य को मृदु बनाता है । ज्ञान कर्तव्याकर्तव्य, विवेकाविवेक, तत्त्वातत्त्व और भक्ष्याभक्ष्य का स्वरूप बतानेवाली आँख है । विश्व के समग्र रहस्यों को प्रकाशित करनेवाला भी ज्ञान ही है ।

सद्ज्ञानानुरागिणी भीनमाल निवासिनी इन सुश्राविकाओं को प्रस्तुत पुस्तक-मुद्रण में अनुपम सहयोग के लिए हमारी जीवननिर्मात्री प. पूज्या वयोवृद्धा सरलस्वभाविनी वात्सल्यमयी साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी म. सा. (पू. दादीजी म.सा.) आशीष देती हैं तथा साथ ही हम भी इन्हें धन्यवाद देती हुई यह मंगलकामना करती हैं कि इनके अन्तःकरण में यथावत् ज्ञानानुराग, विद्याप्रेम और श्रुतज्ञान के प्रति आंतरिक लगाव-रुचि व अनुराग दिन दुगुना रात चौगुना वृद्धिगत होता रहें । यही अभ्यर्थना ।

– डॉ. प्रियदर्शनाश्री
– डॉ. सुदर्शनाश्री

नोट :- भीनमाल निवासिनी सहयोगिनी बहनों की शुभ नामावली प्रस्तुत ग्रन्थ 'सूक्ति-सुधारस' चतुर्थ खण्ड के अन्त में पृ. २५१ पर दी गई है ।

आमुख

– डॉ. जवाहरचन्द्र पटनी,

एम. ए. (हिन्दी-अंग्रेजी), पीएच. डी., बी.टी.

विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी विरले सन्त थे । उनके जीवन-दर्शन से यह ज्ञात होता है कि वे लोक मंगल के क्षीर-सागर थे । उनके प्रति मेरी श्रद्धा-भक्ति तब विशेष बढ़ी, जब मैंने कलिकाल कल्पतरू श्री वल्लभसूरिजी पर 'कलिकाल कल्पतरू' महाग्रन्थ का प्रणयन किया, जो पीएच. डी. उपाधि के लिए जोधपुर विश्वविद्यालय ने स्वीकृत किया । विश्वपूज्य प्रणीत 'अभिधान राजेन्द्र कोष' से मुझे बहुत सहायता मिली । उनके पुनीत पद-पद्मों में कोटिशः वन्दन !

फिर पूज्या डॉ. साध्वी द्वय श्री प्रियदर्शनाश्रीजी म. एवं डॉ. श्री सुदर्शनाश्रीजी म. के ग्रन्थ – 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका', 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' [1 से 7 खण्ड], 'विश्वपूज्य' [श्रीमद् राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ), 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, कथा-कुसुम', 'सुगन्धित सुमन', 'जीवन की मुस्कान' एवं 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' आदि ग्रन्थों का अवलोकन किया । विदुषी साध्वी द्वय ने विश्वपूज्य की तपश्चर्या, कर्मठता एवं कोमलता का जो वर्णन किया है, उससे मैं अभिभूत हो गया और मेरे सम्मुख इस भोगवादी आधुनिक युग में पुरातन ऋषि-महर्षि का विराट् और विनम्र करुणार्द्र तथा सरल, लोक-मंगल का साक्षात् रूप दिखाई दिया ।

श्री विश्वपूज्य इतने दृढ़ थे कि भयंकर झंझावातों और संघर्षों में भी अडिग रहे । सर्वज्ञ वीतराग प्रभु के परमपुनीत स्मरण से वे अपनी नन्हीं देह-किश्ती को उफनते समुद्र में निर्भय चलाते रहें । स्मरण हो आता है, परम गीतार्थ महान् आचार्य मानतुंगसूरिजी रचित महाकाव्य भक्तामर का यह अमर श्लोक –

'अम्भो निधौ क्षुभित भीषण नक्र चक्र,
पाठीन पीठ भय दोल्बण वाडवाग्नौ ।
रङ्गत्तरंग शिखर स्थित यान पात्रा –
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥'

हे स्वामिन् ! क्षुब्ध बने हुए भयंकर मगरमच्छों के समूह और पाठीन तथा पीठ जाति के मत्स्य व भयंकर वड़वानल अग्नि जिसमें है, ऐसे समुद्र में जिनके जहाज लहरों के अग्रभाग पर स्थित हैं; ऐसे जहाजवाले लोग आपका *मात्र स्मरण करने से ही भयरहित होकर निर्विघ्नरूप से इच्छित स्थान पर पहुँचते हैं ।*

विदुषी डॉ. साध्वी द्वय ने विश्वपूज्य के विराट् और कोमल जीवन का यथार्थ वर्णन किया है । उससे यह सहज प्रतीति होती है कि विश्वपूज्य कर्मयोगी महर्षि थे, जिन्होंने उस युग में व्याप्त भ्रष्टाचार और आडम्बर को मिटाने के लिए ग्राम-ग्राम, नगर-नगर, वन-उपवन में पैदल विहार किया । व्यसनमुक्त समाज के निर्माण में अपना समस्त जीवन समर्पित कर दिया ।

विदुषी लेखिकाओंने यह बताया है कि इस महर्षि ने व्यक्ति और समाज को सुसंस्कृत करने हेतु सदाचार-सुचरित्र पर बल दिया तथा सत्साहित्य द्वारा भारतीय गौरवशालिनी संस्कृति को अपनाने के लिए अभिप्रेरित किया ।

इस महर्षि ने हिन्दी में भक्तिरस-पूर्ण स्तवन, पद एवं सज्झायादि गीत लिखे हैं । जो सर्वजनहिताय, स्वान्तः सुखाय और भक्तिरस प्रधान हैं । इनकी समस्त कृतियाँ लोकमंगल की अमृत गगरियाँ हैं ।

गीतों में शास्त्रीय संगीत एवं पूजा-गीतों की लावणियाँ हैं जिनमें माधुर्य भरपूर हैं । विश्वपूज्य ने रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा एवं दृष्टान्त आदि अलंकारों का अपने काव्य में प्रयोग किया है, जो अप्रयास है । ऐसा लगता है कि कविता उनकी हृदय वीणा पर सहज ही झंकृत होती थी । उन्होंने यद्यपि स्वान्तः सुखाय गीत रचना की है, परन्तु इनमें लोकमाङ्गल्य का अमृत स्त्रवित होता है ।

उनके तपोमय जीवन में प्रेम और वात्सल्य की अमी-वृष्टि होती है ।

विश्वपूज्य अर्धमागधी, प्राकृत एवं संस्कृत भाषाओं के अद्वितीय महापण्डित थे । उनकी अमरकृति – 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में इन तीन भाषाओं के शब्दों की सारगर्भित और वैज्ञानिक व्याख्याएँ हैं । यह केवल पण्डितवरों का ही चिन्तामणि रत्न नहीं है, अपितु जनसाधारण को भी इस अमृत-सरोवर का अमृत-पान करके परम तृप्ति का अनुभव होता है । उदाहरण के लिए – जैनधर्म में 'नीवि' और 'गहुँली' शब्द प्रचलित हैं । इन शब्दों की व्याख्या मुझे कहीं भी नहीं मिली । इन शब्दों का समाधान इस कोष में है । 'नीवि' अर्थात् नियमपालन करते हुए विधिपूर्वक आहार लेना । गहुँली गुरु-भगवंतों के शुभागमन पर मार्ग में अक्षत का स्वस्तिक करके उनकी वधामणी करते हैं और गुरुवर के प्रवचन के पश्चात् गीत द्वारा गहुँली गीत गाया जाता है । इनकी

व्युत्पत्ति-व्याख्या 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में मिली। पुरातनकाल में गेहूँ का स्वस्तिक करके गुरुजनों का सत्कार किया जाता था। कालान्तर में अक्षत-चावल का प्रचलन हो गया। यह शब्द योगरूढ़ हो गया, इसलिए गुरु भगवंतों के सम्मान में गाया जानेवाला गीत भी गहुँली हो गया। स्वर्ण मोहरों या रत्नों से गहुँली क्यों न हो, वह गहुँली ही कही जाती है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से अनेक शब्द जिनवाणी की गंगोत्री में लुढ़क-लुढ़क कर, घिस-घिस कर शालिग्राम बन जाते हैं। विश्वपूज्य ने प्रत्येक शब्द के उद्गम-स्रोत की गहन व्याख्या की है। अतः यह कोष वैज्ञानिक है, साहित्यकारों एवं कवियों के लिए रसात्मक है तथा जनसाधारण के लिए शिव-प्रसाद है।

जब कोष की बात आती है तो हमारा मस्तक हिमगिरि के समान विराट् गुरुवर के चरण-कमलों में श्रद्धावनत हो जाता है। षष्टिपूर्ति के तीन वर्ष बाद 63 वर्ष की वृद्धावस्था में विश्वपूज्य ने '**अभिधान राजेन्द्र कोष**' का श्रीगणेश किया और 14 वर्ष के अनवरत परिश्रम व लगन से 76 वर्ष की आयु में इसे परिसम्पन्न किया।

इनके इस महत्दान का मूल्याङ्कन करते हुए मुझे महर्षि दधीचि की पौराणिक कथा का स्मरण हो आता है, जिसमें इन्द्र ने देवासुर संग्राम में देवों की हार और असुरों की जय से निराश होकर इस महर्षि से अस्थिदान की प्रार्थना की थी। सत् विजयाकांक्षा की मंगल-भावना से इस महर्षि ने अनशन तप से देह सुखाकर अस्थिदान इन्द्र को दिया था, जिससे वज्रायुध बना। इन्द्र ने वज्रायुध से असुरों को पराजित किया। इसप्रकार सत् की विजय और असत् की पराजय हुई। 'सत्यमेव जयते' का उद्घोष हुआ।

सचमुच यह कोष वज्रायुध के समान सत्य की रक्षा करनेवाला और असत्य का विध्वंस करनेवाला है।

विदुषी साध्वी द्वय ने इस महाग्रन्थ का मन्थन करके जो अमृत प्राप्त किया है, वह जनता-जनार्दन को समर्पित कर दिया है।

सारांश में - यह ग्रन्थ 'सत्यं-शिवं-सुंदरम्' की परमोज्ज्वल ज्योति सब युगों में जगमगाता रहेगा — यावत्चन्द्रदिवाकरौ।

इस कोष की लोकप्रियता इतनी है कि साण्डेराव ग्राम (जिला-पाली-राजस्थान) के लघु पुस्तकालय में भी इसके नवीन संस्करण के सातों भाग विद्यमान हैं। यही नहीं, भारत के समस्त विश्वविद्यालयों, श्रेष्ठ महाविद्यालयों तथा पाश्चात्त्य देशों के विद्या-संस्थानों में ये उपलब्ध हैं। इनके बिना विश्वविद्यालय और शोध-संस्थान रिक्त लगते हैं।

विदुषी साध्वी द्वय निःसंदेह यशोपात्रा हैं, क्योंकि उन्होंने विश्वपूज्य के पाण्डित्य को ही अपने ग्रन्थों में नहीं दर्शाया है; अपितु इनके लोक-माङ्गल्य का भी प्रशस्त वर्णन किया है।

ये महान् कर्मयोगी पत्थरों में फूल खिलाते हुए, मरूभूमि में गंगा-जमुना की पावन धाराएँ प्रवाहित करते हुए, बिखरे हुए समाज को कलह के काँटों से बाहर निकाल कर प्रेम-सूत्र में बाँधते हुए, पीड़ित प्राणियों की वेदना मिटाते हुए, पर्यावरण - शुद्धि के लिए आत्म-जागृति का पाञ्चजन्य शंख बजाते हुए 80 वर्ष की आयु में प्रभु शरण में कल्पपुष्प के समान समर्पित हो गए।

श्री वाल्मीकि ने रामायण में यह बताया है कि भगवान् राम ने 14 वर्षों के वनवास काल में अछूतों का उद्धार किया, दुःखी-पीड़ित प्राणियों को जीवन-दान दिया, असुर प्रवृत्ति का नाश किया और प्राणि-मैत्री की रसवन्ती गंगधारा प्रवाहित की। इस कालजयी युगवीर आचार्य ने इसीलिए 14 वर्ष कोष की रचना में लगाये होंगे। 14 वर्ष शुभ काल है — मंगल विधायक है। महर्षियों के रहस्य को महर्षि ही जानते हैं।

लाखों-करोड़ों मनुष्यों का प्रकाश-दीप बुझ गया, परन्तु वह बुझा नहीं है। वह समस्त जगत् के जन-मानसों में करूणा और प्रेम के रूप में प्रदीप्त हैं।

विदुषी साध्वी द्वय के ग्रन्थों को पढ़कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि विश्वपूज्य केवल त्रिस्तुतिक आम्नाय के ही जैनाचार्य नहीं थे, अपितु समस्त जैन समाज के गौरव किरीट थे, वे हिन्दुओं के सन्त थे, मुसलमानों के फकीर और ईसाइयों के पादरी। वे जगद्गुरु थे। विश्वपूज्य थे और हैं।

विदुषी डॉ. साध्वी द्वय की भाषा-शैली वसन्त की परिमल के समान मनोहारिणी है। भावों को कल्पना और अलंकारों से इक्षुरस के समान मधुर बना दिया है। समरसता ऐसी है जैसे — सुरसरि का प्रवाह।

दर्शन की गम्भीरता भी सहज और सरल भाषा-शैली से सरस बन गयी है।

इन विदुषी साध्वियों के मंगल-प्रसाद से समाज सुसंस्कारों के प्रशस्त-पथ पर अग्रसर होगा। भविष्य में भी ये साध्वियाँ तृष्णा तृषित आधुनिक युग को अपने जीवन-दर्शन एवं सत्साहित्य के सुगन्धित सुमनों से महकाती रहेंगी! यही शुभेच्छा!

पूज्या साध्वीजी द्वय को विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. की पावन प्रेरणा प्राप्त हुई, इससे इन्होंने इन अभिनव ग्रन्थों का प्रणयन किया।

यह सच है कि रवि-रश्मियों के प्रताप से सरोवर में सरोज सहज ही प्रस्फुटित होते हैं। वासन्ती पवन के हलके से स्पर्श से सुमन सौरभ सहज ही प्रसृत होते हैं। ऐसी ही विश्वपूज्य के वात्सल्य की परिमल इनके ग्रन्थों को सुरभित कर रही हैं। उनकी कृपा इनके ग्रन्थों की आत्मा है।

जिन्हें महाज्ञानी साहित्यमनीषी राष्ट्रसन्त प. पू. आचार्यदेवेश श्रीमद्जयन्तसेनसूरीश्वरजी म. सा. का आर्शीवाद और परम पूज्या जीवन निर्मात्री (सांसारिक दादीजी) साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. का अमित वात्सल्य प्राप्त हों, उनके लिए ऐसे ग्रन्थों का प्रणयन सहज और सुगम क्यों न होगा ? निश्चय ही।

वात्सल्य भाव से मुझे आमुख लिखने का आदेश दिया पूज्या साध्वी द्वय ने। उसके लिए आभारी हूँ, यद्यपि मैं इसके योग्य किञ्चित् भी नहीं हूँ। इति शुभम् !

पौष शुक्ला सप्तमी
5 जनवरी, 1998
कालन्द्री
जिला-सिरोही (राज.)

पूर्वप्राचार्य
श्री पार्श्वनाथ उम्मेद कॉलेज,
फालना (राज.)



१



— डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

(पद्म विभूषण, पूर्व भारतीय राजदूत-ब्रिटेन)

आदरणीया डॉ. प्रियदर्शनाजी एवं डॉ. सुदर्शनाजी साध्वीद्वय ने "विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ)', "अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्तिसुधारस" (1 से 7 खण्ड), एवं अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका" की रचना में जैन परम्परा की यशोगाथा की अमृतमय प्रशस्ति की है। ये ग्रंथ विदुषी साध्वी-द्वय की श्रद्धा, निष्ठा, शोध एवं दृष्टि-सम्पन्नता के परिचायक एवं प्रमाण हैं। एक प्रकार से इस ग्रंथत्रयी में जैन-परम्परा की आधारभूत रत्नत्रयी का प्रोज्ज्वल प्रतिबिम्ब है। युगपुरुष, प्रज्ञामहर्षि, मनीषी आचार्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी के व्यक्तित्व और कृतित्व के विराट् क्षितिज और धरातल की विहंगम छवि प्रस्तुत करते हुए साध्वी-द्वय ने इतिहास के एक शलाकापुरुष की यश-प्रतिमा की संरचना की है, उनकी अप्रतिम उपलब्धियों के ज्योतिर्मय अध्याय को प्रदीप्त और रेखांकित किया है। इन ग्रंथों की शैली साहित्यिक है, विवेचन विश्लेषणात्मक है, संप्रेषण रस-सम्पन्न एवं मनोहारी है और रेखांकन कलात्मक है।

पुण्य श्लोक प्रातःस्मरणीय आचार्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी अपने जन्म के नाम के अनुसार ही वास्तव में 'रत्नराज' थे। अपने समय में वे जैनपरम्परा में ही नहीं बल्कि भारतीय विद्या के विश्रुत विद्वान् एवं विद्वत्ता के शिरोमणि थे। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में सागर की गहराई और पर्वत की ऊँचाई विद्यमान थी। इसीलिए उनको विश्वपूज्य के अलंकरण से विभूषित करते हुए वह अलंकरण ही अलंकृत हुआ। भारतीय वाङ्मय में "अभिधान राजेन्द्र कोष" एक अद्वितीय, विलक्षण और विराट् कीर्तिमान है जिसमें संस्कृत, प्राकृत एवं अर्धमागधी की त्रिवेणी भाषाओं और उन भाषाओं में प्राप्त विविध परम्पराओं की सूक्तियों की सरल और सांगोपांग व्याख्याएँ हैं, शब्दों का विवेचन और दार्शनिक संदर्भों की अक्षय सम्पदा है। लगभग ६० हजार शब्दों की व्याख्याओं एवं साढ़े चार लाख श्लोकों के ऐश्वर्य से महिमामंडित यह ग्रंथ जैन परम्परा एवं समग्र भारतीय विद्या का अपूर्व भंडार है। साध्वीद्वय डॉ. प्रियदर्शनाश्री एवं डॉ. सुदर्शनाश्री की यह प्रस्तुति एक ऐसा साहसिक सारस्वत

प्रयास है जिसकी सराहना और प्रशस्ति में जितना कहा जाय वह स्वल्प ही होगा, अपर्याप्त ही माना जायगा । उनके पूर्वप्रकाशित ग्रंथ "आनंदघन का रहस्यवाद" एवं आचारांग सूत्र का नीतिशास्त्रीय अध्ययन" प्रत्यूष की तरह इन विदुषी साध्वियों की प्रतिभा की पूर्व सूचना दे रहे थे । विश्व पूज्य की अमर स्मृति में साधना के ये नव दिव्य पुष्प अरुणोदय की रश्मियों की तरह हैं।

24-4-1998
4F, White House,
10, Bhagwandas Road,
New Delhi-110001



10

'दो शब्द'

— पं. दलसुख मालवणिया

पूज्या डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी साध्वीद्वयने "अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका" एवं "अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस" (1 से 7 खण्ड), आदि ग्रन्थ लिखकर तैयार किए हैं, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं गौरवमयी रचनाएँ हैं। उनका यह अथक प्रयास स्तुत्य है। साध्वीद्वय का यह कार्य उपयोगी तो है ही, तदुपरान्त जिज्ञासुजनों के लिए भी उपकारक हो, वैसा है।

इसप्रकार जैनदर्शन की सरल और संक्षिप्त जानकारी अन्यत्र दुर्लभ है। जिज्ञासु पाठकों को जैनधर्म के सद् आचार-विचार, तप-संयम, विनय-विवेक विषयक आवश्यक ज्ञान प्राप्त हो जाय, वैसी कृतियाँ हैं।

पूज्या साध्वीद्वय द्वारा लिखित इन कृतियों के माध्यम से मानव-समाज को जैनधर्म-दर्शन सम्बन्धी एक दिशा, एक नई चेतना प्राप्त होगी।

ऐसे उत्तम कार्य के लिए साध्वीद्वय का जितना उपकार माना जाय, वह स्वल्प ही होगा।

दिनांक : 30-4-98
माधुरी-8,
आपेरा सोसायटी, पालड़ी,
अहमदाबाद-380007



11

सूक्ति-सुधारस: मेरी दृष्टि में

— *डॉ. नेमीचन्द जैन*
संपादक "तीर्थकर"

'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' के एक से सात खण्ड तक में, मैं गोते लगा सका हूँ। आनन्दित हूँ। रस-विभोर हूँ। कवि बिहारी के दोहे की एक पंक्ति बार-बार आँखों के सामने आ-जा रही है : "बूड़े अनबूड़े, तिरे जे बूड़े सब अंग"। जो डूबे नहीं, वे डूब गये हैं और जो डूब सके हैं सिर-से-पैर तक वे तिर गये हैं। अध्यात्म, विशेषत: श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी के 'अभिधान राजेन्द्र कोष' का यही आलम है। डूबिये, तिर जाएँगे, सतह पर रहिये, डूब जाएँगे।

वस्तुत: 'अभिधान राजेन्द्र कोष' का एक-एक वर्ण बहुमुखीता का धनी है। यह अप्रतिम कृति 'विश्वपूज्य' का 'विश्वकोश' (एन्सायक्लोपीडिया) है। जैसे-जैसे हम इसके तलातल का आलोड़न करते हैं, वैसे-वैसे जीवन की दिव्य छबियाँ थिरकती-ठुमकती हमारे सामने आ खड़ी होती हैं। हमारा जीवन सर्वोत्तम से संवाद बनने लगता है।

'अभिधान राजेन्द्र' में संयोगत: सम्मिलित सूक्तियाँ ऐसी सूक्तियाँ हैं, जिनमें श्रीमद् की मनीषा-स्वाति ने दुर्लभ/दीप्तिमन्त मुक्ताओं को जन्म दिया है। ये सूक्तियाँ लोक-जीवन को माँजने और उसे स्वच्छ-स्वस्थ दिशा-दृष्टि देने में अद्वितीय हैं। मुझे विश्वास है कि साध्वीद्वय का यह प्रथम पुरुषार्थ उन तमाम सूक्तियों को, जो 'अभिधान राजेन्द्र' में प्रसंगत: समाविष्ट हैं, प्रस्तुत करने में सफल होगा। मेरे विनम्र मत में यदि इनमें-से कुछेक सूक्तियों का मन्दिरों, देवालयों, स्वाध्याय-कक्षों, स्कूल-कॉलेजों की भित्तियों पर अंकन होता है तो इससे हमारी धार्मिक असंगतियों को तो एक निर्मल कायाकल्प मिलेगा ही, राष्ट्रीय चरित्र को भी नैतिक उठान मिलेगा। मैं न सिर्फ २६६७ सूक्तियों के ७ बृहत् खण्डों की प्रतीक्षा करूँगा, अपितु चाहूँगा कि इन सप्त सिन्धुओं के सावधान परिमन्थन से कोई 'राजेन्द्र सूक्ति नवनीत' जैसी लघुपुस्तिका सूरज की पहली किरण देखे। ताकि संतप्त मानवता के घावों पर चन्दन-लेप संभव हो।

27-04-1998
65, पत्रकार कालोनी, कनाड़िया मार्ग,
इन्दौर (म.प्र.)-452001



— *डॉ. सागरमल जैन*

पूर्व निर्देशक पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (१ से ७ खण्ड) नामक इस कृति का प्रणयन पूज्या साध्वीश्री डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी ने किया है । वस्तुतः यह कृति अभिधानराजेन्द्रकोष में आई हुई महत्त्वपूर्ण सूक्तियों का अनूठा आलेखन हैं । लगभग एक शताब्दि पूर्व ईस्वीसन् १८९० आश्विन शुक्ला दूज के दिन शुभ लग्न में इस कोष ग्रन्थ का प्रणयन प्रारम्भ हुआ और पूज्य आचार्य भगवन्त श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी के अथक प्रयासों से लगभग १४ वर्ष में यह पूर्ण हुआ फिर इसके प्रकाशन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई जो पुनः १७ वर्षों में पूर्ण हुई । जैनधर्म सम्बन्धी विश्वकोषों में यह कोष ग्रन्थ आज भी सर्वोपरि स्थान रखता है । प्रस्तुत कोष में जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति और साहित्य से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण शब्दों का अकारादि क्रम से विस्तारपूर्वक विवेचन उपलब्ध होता है । इस विवेचना में लगभग शताधिक ग्रन्थों से सन्दर्भ चुने गये हैं । प्रस्तुत कृति में साध्वी-द्वय ने इसी कोषग्रन्थ को आधार बनाकर सूक्तियों का आलेखन किया हैं । उन्होंने अभिधान राजेन्द्र कोष के प्रत्येक खण्ड को आधार मानकर इस 'सूक्ति-सुधारस' को भी सात खण्डों में ही विभाजित किया हैं । इसके प्रथम खण्ड में अभिधान राजेन्द्र कोष के प्रथम भाग से सूक्तियों का आलेखन किया है । यही क्रम आगे के खण्डों में भी अपनाया गया हैं । 'सूक्ति-सुधारस' के प्रत्येक खण्ड का आधार अभिधान राजेन्द्र कोष का प्रत्येक भाग ही रहा हैं । अभिधान राजेन्द्र कोष के प्रत्येक भाग को आधार बनाकर सूक्तियां का संकलन करने के कारण सूक्तियों को न तो अकारादिक्रम से प्रस्तुत किया गया है और न उन्हें विषय के आधार पर ही वर्गीकृत किया गया हैं, किन्तु पाठकों की सुविधा के लिए परिशिष्ट में अकारादिक्रम से एवं विषयानुक्रम से शब्द-सूचियाँ दे दी गई हैं, इससे जो पाठक अकारादि क्रम से अथवा विषयानुक्रम से इन्हें जानना चाहे उन्हें भी सुविधा हो सकेगी । इन परिशिष्टों के माध्यम से प्रस्तुत कृति अकारादिक्रम अथवा विषयानुक्रम की कमी की पूर्ति कर देती है । प्रस्तुतकृति में प्रत्येक

सूक्ति के अन्त में अभिधान राजेन्द्र कोष के सन्दर्भ के साथ-साथ उस मूल ग्रन्थ का भी सन्दर्भ दे दिया गया है, जिससे ये सूक्तियाँ अभिधान राजेन्द्र कोष में अवतरित की गई। मूलग्रन्थों के सन्दर्भ होने से यह कृति शोध-छात्रों के लिए भी उपयोगी बन गई हैं।

वस्तुतः सूक्तियाँ अतिसंक्षेप में हमारे आध्यात्मिक एवं सामाजिक जीवन मूल्योंको उजागर कर व्यक्ति को सम्यक्जीवन जीने की प्रेरणा देती हैं। अतः ये सूक्तियाँ जन साधारण और विद्वत् वर्ग सभी के लिए उपयोगी हैं। आबाल-वृद्ध उनसे लाभ उठा सकते हैं। साध्वीद्वय ने परिश्रमपूर्वक जो इन सूक्तियों का संकलन किया है वह अभिधान राजेन्द्र कोष रूपी महासागर से रत्नों के चयन के जैसा हैं। प्रस्तुत कृति में प्रत्येक सूक्ति के अन्त में उसका हिन्दी भाषा में अर्थ भी दे दिया गया है, जिसके कारण प्राकृत और संस्कृत से अनभिज्ञ सामान्य व्यक्ति भी इस कृति का लाभ उठा सकता हैं। इन सूक्तियों के आलेखन में लेखिका-द्वय ने न केवल जैनग्रन्थों में उपलब्ध सूक्तियों का संकलन/संयोजन किया है, अपितु वेद, उपनिषद, गीता, महाभारत, पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि की भी अभिधान राजेन्द्र कोष में गृहीत सूक्तियों का संकलन कर अपनी उदारहृदयता का परिचय दिया है। निश्चय ही इस महनीय श्रम के लिए साध्वी-द्वय-पूज्या डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी साधुवाद की पात्रा हैं। अन्त में मैं यही आशा करता हूँ कि जन सामान्य इस 'सूक्ति-सुधारस' में अवगाहन कर इसमें उपलब्ध सुधारस का आस्वादन करता हुआ अपने जीवन को सफल करेगा और इसी रूप में साध्वी द्वय का यह श्रम भी सफल होगा।

दिनांक 31-6-1998
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान
वाराणसी (उ.प्र.)





विद्याव्रती
शास्त्र सिद्धान्त रहस्य विद् ?
— पं. गोविन्दराम व्यास

उक्तियाँ और सूक्त-सूक्तियाँ वाङ्‌मय वारिधि की विवेक वीचियाँ हैं। विद्या संस्कार विमर्शिता विगत की विवेचनाएँ हैं । विवर्द्धित-वाङ्मय की वैभवी विचारणाएँ हैं । सार्वभौम सत्य की स्तुतियाँ हैं । प्रत्येक पल की परमार्शदायिनी-पारदर्शिनी प्रज्ञा पारमिताएँ हैं । समाज, संस्कृति और साहित्य की सरसता की छवियाँ हैं। क्रान्तदर्शी कोविदों की पारदर्शिनी परिभाषाएँ हैं। मनीषियों की मनीषा की महत्त्व प्रतिपादिनी पीपासाएँ हैं । क्रूर-काल के कौतुकों में भी आयुष्मती होकर अनागत का अवबोध देती रही हैं । ऐसी सूक्तियों को सश्रद्ध नमन करता हुआ वाग्‌देवता का विद्या-प्रिय विप्र होकर वाङ् मयी पूजा में प्रयोगवान् बन रहा हूँ ।

श्रमण-संस्कृति की स्वाध्याय में स्वात्म-निष्ठा निराली रही है । आचार्य हरिभद्र, अभय, मलय जैसे मूर्धन्य महामतिमान्, सिद्धसेन जैसे शिरोमणि, सक्षम, श्रद्धालु जिनभद्र जैसे - क्षमाश्रमणों का जीवन वाङ्‌मयी वरिवस्या का विशेष अंग रहा है ।

स्वाध्याय का शोभनीय आचार अद्यावधि-हमारे यहाँ अक्षुण्ण पाया जाता है । इसीलिए स्वाध्याय एवं प्रवचन में अप्रमत्त रहने का समादश शास्त्रकारों ने स्वीकार किया है ।

वस्तुतः नैतिक मूल्यों के जागरण के लिए, आध्यात्मिक चेतना के ऊर्ध्वीकरण के लिए एवं शाश्वत मूल्यों के प्रतिष्ठापन के लिए आर्याप्रवरा द्वय द्वारा रचित प्रस्तुत ग्रन्थ 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका' एक उपादेय महत्त्वपूर्ण गौरवमयी रचना है ।

आत्म-अभ्युदयशीला, स्वाध्याय-परायणा, सतत अनुशीलन उज्ज्वला आर्या डॉ. श्री प्रियदर्शनाजी एवं डॉ. श्री सुदर्शनाजी की शास्त्रीय-साधना सराहनीया है । इन्होंने अपने आम्नाय के आद्य-पुरुष की प्रतिभा का परिचय प्राप्त करने का प्रयास कर अपनी चारित्र-सम्पदा को वाङ्मयी साधना में समर्पिता करती

हुई 'विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ') का रहस्योद्घाटन किया है ।

विदुषी श्रमणी द्वय ने प्रस्तुत कृति 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) को कोषों के कारागारों से मुक्तकर जीवन की वाणी में विशद करने का विश्वास उपजाया है । अतः आर्या युगल, इसप्रकार की वाङ्मयी-भारती भक्ति में भूषिता रहें एवं आत्मतोष में तोषिता होकर सारस्वत इतिहास की असामान्या विदुषी बनकर वाङ्मय के प्रांगण की प्रोन्नता भूमिका निभाती रहें । यही मेरा आत्मीय अमोघ आशीर्वाद है ।

इनका विद्या-विवेकयोग, श्रुतों की समाराधना में अच्युत रहे, अपनी निरहंकारिता को अतीव निर्मला बनाता रहे और उत्तरोत्तर समुत्साह-समुन्नत होकर स्वान्तः सुख को समुल्लसित रचता रहे । यही सदाशया शोभना शुभाकांक्षा है ।

चैत्रसुदी 5 बुध
1 अप्रैल, 98
हरजी
जिला - जालोर (राज.)





— पं. जयनंदन झा,
व्याकरण साहित्याचार्य,
साहित्य रत्न एवं शिक्षाशास्त्री

मनुष्य विधाता की सर्वोत्तम सृष्टि है । वह अपने उदात्त मानवीय गुणों के कारण सारे जीवों में उत्तरोत्तर चिन्तनशील होता हुआ विकास की प्रक्रिया में अनवरत प्रवर्धमान रहा है । उसने पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति ही जीवन का परम ध्येय माना है, पर ज्ञानीजन ने इस संसार को ही परम ध्येय न मानकर अध्यात्म ज्ञान को ही सर्वोपरि स्थान दिया है । अतः जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति में धर्म, अर्थ और काम को केवल साधन मात्र माना है ।

इसलिये अध्यात्म चिन्तन में भारत विश्वमंच पर अति श्रद्धा के साथ प्रशंसित रहा है । इसकी धर्म सहिष्णुता अनोखी एवं मानवमात्र के लिये अनुकरणीय रही है । यहाँ वैष्णव, जैन तथा बौद्ध धर्माचार्यों ने मिलकर धर्म की तीन पवित्र नदियों का संगम "त्रिवेणी" पवित्र तीर्थ स्थापित किया है जहाँ सारे धर्माचार्य अपने-अपने चिन्तन से सामान्य मानव को भी मिल-बैठकर धर्मचर्चा के लिये विवश कर देते हैं । इस क्षेत्र में किस धर्म का कितना योगदान रहा है, यह निर्णय करना अल्प बुद्धि साध्य नहीं है ।

पर, इतना निर्विवाद है कि जैन मनीषी और सन्त अपनी-अपनी विशिष्ट विशेषताओं के लिये आत्मोत्कर्ष के क्षेत्र में तपे हुए मणि के समान सहस्र-सूर्य-किरण के कीर्तिस्तम्भ से भारतीय दर्शन को प्रोद्भासित कर रहे हैं, जो काल की सीमा से रहित है । जैनधर्म व दर्शन शाश्वत एवं चिरन्तन है, जो विविध आयामों से इसके अनेकान्तवाद को परिभाषित एवं पुष्ट कर रहे हैं । ज्ञान और तप तो इसकी अक्षय निधि है ।

जैन धर्म में भी मन्दिर मार्गी-त्रिस्तुतिक परम्परा के सर्वोत्कृष्ट साधक जैनधर्माचार्य "श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. अपनी तपःसाधना और ज्ञानमीमांसा से परमपूत होने के कारण सार्वकालिक सार्वजनीन वन्द्य एवं प्रातः स्मरणीय भी हैं जिनका सम्पूर्ण जीवन सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय समर्पित रहा है । इनका सम्पूर्ण-जीवन अथाह समुद्र की भाँति है, जहाँ निरन्तर गोता लगाने

पर केवल रत्न की ही प्राप्ति होती है, पर यह अमूल्य रत्न केवल साधक को ही मिल पाता है। साधक की साधना जब उच्च कोटि की हो जाती है तब साध्य संभव हो पाता है। राजेन्द्र कोष तो इनकी अक्षय शब्द मंजूषा है, जो शब्द यहाँ नहीं है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है।

ऐसे महान् मनीषी एवं सन्त को अक्षरशः समझाने के लिये डॉ. प्रियदर्शनाश्री जी एवं डॉ. सुदर्शनाश्री जी साध्वीद्वय ने (१) अभिधान राजेन्द्र कोष में, "सूक्ति-सुधारस" (१ से ७ खण्ड) (२) अभिधान राजेन्द्र कोष में, "जैनदर्शन वाटिका" तथा (३) 'विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्र सूरि : जीवन-सौरभ) इन अमूल्य ग्रन्थों की रचना कर साधक की साधना को अतीव सरल बना दिया है। परम पूज्या ! साध्वीद्वय ने इन ग्रन्थों की रचना में जो अपनी बुद्धिमत्ता एवं लेखन-चातुर्य का परिचय दिया है वह स्तुत्य ही नहीं; अपितु इस भौतिकवादी युग में जन-जन के लिये अध्यात्मक्षेत्र में पाथेय भी बनेगा। मैंने इन ग्रन्थों का विहंगम अवलोकन किया है। भाषा की प्रांजलता और विषयबोध की सुगमता तो पाठक को उत्तरोत्तर अध्ययन करने में रूचि पैदा करेगी, वह सहज ही सबके लिये हृदयग्राहिणी बनेगी। यही लेखिकाद्वय की लेखनी की सार्थकता बनेगी।

अन्त में यहाँ यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि "रघुवंश" महाकाव्य-रचना के प्रारंभ में कालिदास ने लिखा है कि "तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्" पर वही कालिदास कवि सम्राट् कहलाये। इसीतरह आप दोनों का यह परम लोकोपकारी अथक प्रयास भौतिकवादी मानवमात्र के लिये शाश्वत शान्ति प्रदान करने में सहायक बन पायेगा। इति। शुभम्।

25-7-98
3घ - 12 मधुबन हा. बो.
बासनी, जोधपुर



15

मन्तव्य

पं. हीरालाल शास्त्री
एम.ए.

विदुषी साध्वीद्वय डॉ. प्रियदर्शना श्री एम. ए., पीएच. डी. एवं डॉ. सुदर्शनाश्री एम. ए. पीएच. डी. द्वारा रचित ग्रन्थ 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) सुभाषित सूक्तियों एवं वैदुष्यपूर्ण हृदयग्राही वाक्यों के रूप में एक पीयूष सागर के समान है ।

आज के गिरते नैतिक मूल्यों, भौतिकवादी दृष्टिकोण की अशान्ति एवं तनावभरे सांसारिक प्राणी के लिए तो यह एक रसायन है, जिसे पढ़कर आत्मिक शान्ति, दृढ इच्छा-शक्ति एवं नैतिक मूल्यों की चारित्रिक सुरभि अपने जीवन के उपवन में व्यक्ति एवं समष्टि की उदात्त भावनाएँ गहगहायमान हो सकेगी, यह अतिशयोक्ति नहीं, एक वास्तविकता है ।

आपका प्रयास स्वान्तःसुखाय लोकहिताय है । 'सूक्ति-सुधारस' जीवन में संघर्षो के प्रति साहस से अडिग रहने की प्रेरणा देता है ।

ऐसे सत्साहित्य 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की महक से व्यक्ति को जीवंत बनाकर आध्यात्मिक शिवमार्ग का पथिक बनाते हैं ।

आपका प्रयास भगीरथ प्रयास है ।

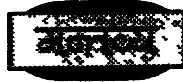
भविष्य में शुभ कामनाओं के साथ ।

महावीर जन्म कल्याणक, गुरुवार
दि. 9 अप्रैल, 1998
ज्योतिष-सेवा
राजेन्द्रनगर
जालोर (राज.)

निवृत्तमान संस्कृत व्याख्याता
राज. शिक्षा-सेवा
राजस्थान







— डॉ. अखिलेशकुमार राय

साध्वीद्वय डो. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डो. सुदर्शनाश्रीजी द्वारा रचित प्रस्तुत पुस्तक का मैंने आद्योपान्त अवलोकन किया है। इनकी रचना 'सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) में श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वर जी की अमरकृति 'अभिधान राजेन्द्र कोष' के प्रत्येक भाग को आधार बनाकर कुछ प्रमुख सूक्तियों का सुंदर-सरस व सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। साध्वीद्वय का यह संकल्प है कि 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में उपलब्ध लगभग २७०० सूक्तियों का सात खण्डों में संचयन कर सर्वसाधारण के लिये सुलभ कराया जाय। इसप्रकार का अनूठा संकल्प अपने आपमें अद्वितीय कहा जा सकता है। मेरा विश्वास है कि ऐसी सूक्ति सम्पन्न रचनाओं से पाठकगण के चरित्र निर्माण की दिशा निर्धारित होगी।

अब सुहृद्जनों का यह पुनीत कर्तव्य है कि वे इसे अधिक से अधिक लोगों के पठनार्थ सुलभ करायें। मैं इस महत्त्वपूर्ण रचना के लिये साध्वीद्वय की सराहना करता हूँ; इन्हें साधुवाद देता हूँ और यह शुभकामना प्रकट करता हूँ कि ये इसप्रकार की और भी अनेक रचनायें समाज को उपलब्ध करायें।

दिनांक 9 अप्रेल, 1998
चैत्र शुक्ला त्रयोदशी
1/1 प्रोफेसर कालोनी,
महाराजा कोलेज,
छतरपुर (म.प्र.)





— *डॉ. अमृतलाल गाँधी*

सेवानिवृत्त प्राध्यापक,

सम्यग्ज्ञान की आराधना में समर्पिता विदुषी साध्वीद्वय डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी म. एवं डॉ. सुदर्शना श्रीजी म. ने 'सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) की 2667 सूक्तियों में अभिधान राजेन्द्र कोष के मन्थन का मक्खन सरल हिन्दी भाषा में प्रस्तुत कर जनसाधारण की सेवार्थ यह ग्रन्थ लिखकर जैन साहित्य के विपुल ज्ञान भण्डार में सराहनीय अभिवृद्धि की है। साध्वीद्वय ने कोष के सात भागों की सूक्तियों / सुकथनों की अलग-अलग सात खण्डों में व्याख्या करने का सफल सुप्रयास किया है, जिसकी मैं सराहना एवं अनुमोदना करते हुए स्वयं को भी इस पवित्र ज्ञानगंगा की पवित्र धारा में आंशिक सहभागी बनाकर सौभाग्यशाली मानता हूँ।

वस्तुतः अभिधान राजेन्द्र कोष पयोनिधि है। पूज्या विदुषी साध्वीद्वयने सूक्ति-सुधारस रचकर एक ओर कोष की विश्वविख्यात महिमा को उजागर किया है और दूसरी ओर अपने शुभ श्रम, मौलिक अनुसंधान दृष्टि, अभिनव कल्पना और हंस की तरह मुक्ताचयन की विवेकशीलता का परिचय दिया है।

मैं उनको इस महान् कृति के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ।

जयनारायण व्यास विश्व विद्यालय,
जोधपुर

दिनांक : 16 अप्रैल, 1998

738, नेहरूपार्क रोड,
जोधपुर (राजस्थान)





— भागचन्द जैन कवाड़
प्राध्यापक (अंग्रेजी)

प्रस्तुत ग्रंथ "अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस" (1 से 7 खण्ड) 5 परिशिष्टों में विभक्त 2667 सूक्तियों से युक्त एक बहुमूल्य एवं अमृत कणों से परिपूर्ण ग्रन्थ है। विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी द्वारा प्रस्तुत ग्रन्थ में अन्यान्य उपयोगी जीवन दर्शन से सम्बन्धित विषयों का समावेश किया गया है। उदाहरण स्वरूप जीवनोपयोगी, नैतिकता तथा आध्यात्मिक जगत् को स्पर्श करने वाले विषय यथा – 'धर्म में शीघ्रता', 'आत्मवत् चाहो', 'समाधि', 'किञ्चिद् श्रेयस्कर', 'अकथा', 'क्रोध परिणाम', 'अपशब्द', सच्चा भिक्षु, धीर साधक, पुण्य कर्म, अजीर्ण, बुद्धियुक्त वाणी, बलप्रद जल, सच्चा आराधक, ज्ञान और कर्म, पूर्ण आत्मस्थ, दुर्लभ मानव-भव, मित्र-शत्रु कौन ?, कर्त्ता-भोक्ता आत्मा, रत्नपारखी, अनुशासन, कर्म विपाक, कल्याण कामना, तेजस्वी वचन, सत्योपदेश, धर्मपात्रता, स्याद्वाद आदि।

सर्वत्र ग्रन्थ में अमृत-कणों का कलश छलक रहा है तथा उनकी सुवास व्याप्त है जो पाठक को भाव विभोर कर देती है, वह कुछ क्षणों के लिए अतिशय आत्मिक सुख में लीन हो जाता है। विदुषी महासतियाँ द्वय डॉ. प्रियदर्शना श्री जी एवं डॉ. सुदर्शना श्री जी ने अपनी प्रखर लेखनी के द्वारा गूढ़तम विषयों को सरलतम रूप से प्रस्तुत कर पाठकों को सहज भाव से सुधा का पान कराया है। धन्य है उनकी अथक साधना लगन व परिश्रम का सुफल जो इस धरती पर सर्वत्र आलोक किरणें बिखेरेगा और धन्य एवं पुलकित हो उठेंगे हम सब।

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी
दिनांक 9 अप्रैल 1998
विजय निवास,
कचहरी रोड़,
किशनगढ़ शहर (राज.)

अग्रवाल गर्ल्स कोलेज
मदनगंज (राज.)


दर्पण



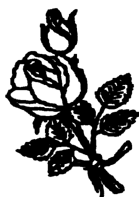
'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' ग्रन्थ का प्रकाशन 7 खण्डों में हुआ है। प्रथम खण्ड में 'अ' से 'ह' तक के शीर्षकों के अन्तर्गत सूक्तियाँ संजोयी गई हैं। अन्त में अकारादि अनुक्रमणिका दी गई हैं। प्रायः यही क्रम 'सूक्ति सुधारस' के सातों खण्डों में मिलेगा। शीर्षकों का अकारादि क्रम है। शीर्षक सूची विषयानुक्रम आदि हर खण्ड के अन्त में परिशिष्ट में दी गई है। पाठक के लिए परिशिष्ट में उपयोगी सामग्री संजोयी गई है। प्रत्येक खण्ड में 5 परिशिष्ट हैं। प्रथम परिशिष्ट में अकारादि अनुक्रमणिका, द्वितीय परिशिष्ट में विषयानुक्रमणिका, तृतीय परिशिष्ट में अभिधान राजेन्द्र : पृष्ठ संख्या, अनुक्रमणिका, चतुर्थ परिशिष्ट में जैन एवं जैनेतर ग्रन्थः गाथा/श्लोकादि अनुक्रमणिका और पञ्चम परिशिष्ट में 'सूक्ति-सुधारस' में प्रयुक्त सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची दी गई है। हर खण्ड में यही क्रम मिलेगा। 'सूक्ति-सुधारस' के प्रत्येक खण्ड में सूक्ति का क्रम इसप्रकार रखा गया है कि सर्व प्रथम सूक्ति का शीर्षक एवं मूल सूक्ति दी गई है। फिर वह सूक्ति अभिधान राजेन्द्र कोष के किस भाग के किस पृष्ठ से उद्धृत है। सूक्ति-आधार ग्रन्थ कौन-सा है ? उसका नाम और वह कहाँ आयी है, वह दिया है। अन्त में सूक्ति का हिन्दी भाषा में सरलार्थ दिया गया है।

सूक्ति-सुधारस के प्रथम खण्ड में 251 सूक्तियाँ हैं।
सूक्ति-सुधारस के द्वितीय खण्ड में 259 सूक्तियाँ हैं।
सूक्ति-सुधारस के तृतीय खण्ड में 289 सूक्तियाँ हैं।
सूक्ति-सुधारस के चतुर्थ खण्ड में 467 सूक्तियाँ हैं।
सूक्ति-सुधारस के पंचम खण्ड में 471 सूक्तियाँ हैं।
सूक्ति-सुधारस के षष्टम खण्ड में 607 सूक्तियाँ हैं।
सूक्ति-सुधारस के सप्तम खण्ड में 323 सूक्तियाँ हैं।

कुल मिलाकर 'सूक्ति सुधारस' के सप्त खण्डों में 2667 सूक्तियाँ हैं। इस ग्रन्थ में न केवल जैनागमों व जैन ग्रन्थों की सूक्तियाँ हैं, अपितु वेद,

उपनिषद, गीता, महाभारत, आयुर्वेद शास्त्र, ज्योतिष, नीतिशास्त्र, पुराण, स्मृति, पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि ग्रन्थों की भी सूक्तियाँ हैं।

1. विश्वपूज्य प्रणीत सम्पूर्ण वाङ्मय
2. लेखिका द्वय की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ



‘विश्वपूज्य:’
जीवन-दर्शन

जीवन दर्शन

महिमामण्डित बहुरत्नावसुन्धरा से समलंकृत परम पावन भारतभूमि की वीर प्रसविनी राजस्थान की ब्रजधरा भरतपुर में सन् 1827 - 3 दिसम्बर को पौष शुक्ला सप्तमी, गुरुवार के शुभ दिन एक दिव्य नक्षत्र संतशिरोमणि विश्वपूज्य आचार्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी ने जन्म लिया, जिन्होंने अस्सी वर्ष की आयु तक लोकमाङ्गल्य की गंगधारा समस्त जगत् में प्रवाहित की ।

उनका जीवन भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित करने के लिए समर्पित हुआ ।

वह युग अँग्रेजी राज्य की धूमिल घन घटाओं से आच्छादित था। पाश्चात्त्य संस्कृति की चकाचौंध ने भारत की सरल आत्मा को कुण्ठित कर दिया था। नव पीढ़ी ईसाई मिशनरियों के धर्मप्रचार से प्रभावित हो गई थी। अँग्रेजी शासन में पद-लिप्सा के कारण शिक्षित युवापीढ़ी अतिशय आकर्षित थी ।

ऐसे अन्धकारमय युग में भारतीय संस्कृति की गरिमा को अक्षुण्ण रखने के लिए जहाँ एक ओर राजा राममोहनराय ने ब्रह्मसमाज की स्थापना की, तो दूसरी ओर दयानन्द सरस्वती ने वैदिक धर्म का शंखनाद किया। उसी युग में पुनर्जागरण के लिए प्रार्थना समाज और एनी बेसेन्ट ने थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना की। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम को अँग्रेजी शासन की तोपों ने कुचल दिया था। भारतीय जनता को निराशा और उदासीनता ने घेर लिया था।

जागृति का शंखनाद फूँकने के लिए लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने यह उद्घोषणा की – 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।' महामना मदनमोहन मालवीय ने बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय की स्थापना की ।

श्री मोहनदास कर्मचन्द गान्धी (राष्ट्रपिता - महात्मा गाँधी) को महान् संत श्रीमद् राजचन्द्र की स्वीकृति से उनके पिताश्री कर्मचन्दजी ने इंग्लैंड में बार-एट-लॉ उपाधि हेतु भेजा । गाँधीजी ने महान् संत श्रीमद् राजचन्द्र की तीन प्रतिज्ञाएँ पालन कर भारत की गौरवशालिनी संस्कृति को उजागर किया। ये तीन प्रतिज्ञाएँ थीं — 1. मांसाहार त्याग 2. मदिरापान त्याग और 3. ब्रह्मचर्य का पालन। ये प्रतिज्ञाएँ भारतीय संस्कृति की रवि-रश्मियाँ हैं, जिनके प्रकाश से भारत जगद्गुरु के पद पर प्रतिष्ठित हैं, परन्तु आँग्ल शासन ने हमारी उज्ज्वल संस्कृति को नष्ट करने का भरसक प्रयास किया ।

ऐसे समय में अनेक दिव्य एवं तेजस्वी महापुरुषों ने जन्म लिया जिनमें श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, श्री आत्मारामजी (सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्रीमद् विजयानन्द सूरिजी) एवं विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी म. आदि हैं।

श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी ने चरित्र निर्माण और संस्कृति की पुनर्स्थापना के लिए जो कार्य किया, वह स्वर्णाक्षरों में अङ्कित है । एक ओर उन्होंने भारतीय साहित्य के गौरवशाली, चिन्तामणि रत्न के समान 'अभिधान राजेन्द्र कोष' को सात खण्डों में रचकर भारतीय वाङ्मय को विश्व में गौरवान्वित किया, तो दूसरी और उन्होंने सरल, तपोनिष्ठ, त्याग, करुणार्द्र और कोमल जीवन से सबको मैत्री-सूत्र में गुम्फित किया ।

विश्वपूज्य की उपाधि उनको जनता जनार्दन ने, उनके प्रति अगाध श्रद्धा-प्रीति और भक्ति से प्रदान की है, यद्यपि ये निर्मोही अनासक्त योगी थे। न तो किसी उपाधि-पदवी के आकाङ्क्षी थे और न अपनी यशोपताका फहराने के लिए लालायित थे ।

उनका जीवन अनन्त ज्योतिर्मय एवं करुणा रस का सुधा-सिन्धु था !

उन्होंने अपने जीवनकाल में महनीय 61 ग्रन्थों की रचना की है जिनमें काव्य, भक्ति और संस्कृति की रसवंती धाराएँ प्रवाहित हैं।

वस्तुतः उनका मूल्यांकन करना हमारे वश की बात नहीं. फिरभी हम प्रीतिवश यह लिखती हैं कि जिस समय भारत के मनीषी-साहित्यकार एवं कवि भारतीय संस्कृति और साहित्य को पुनर्जीवित करना चाहते थे, उस समय विश्वपूज्य भी भारत के गौरव को उद्भासित करने के लिए 63 वर्ष की आयु में सन् 1890 आश्विन शुक्ला 2 को कोष के प्रणयन में जुट गए। इस कोष के सप्त खण्डों को उन्होंने सन् 1903 चैत्र शुक्ला 13 को परिसम्पन्न किया। यह शुभ दिन भगवान् महावीर का जन्म कल्याणक दिवस है। शुभारम्भ नवरात्रि में किया और समापन प्रभु के जन्म-कल्याणक के दिन वसन्त ऋतु की मनमोहक सुगन्ध बिखेरते हुए किया ।

यह उल्लेख करना समीचीन है कि उस युग में मैकाले ने अँग्रेजी भाषा और साहित्य को भारतीय विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में अनिवार्य कर दिया था और नई पीढ़ी अँग्रेजी भाषा तथा साहित्य को पढ़कर भारतीय साहित्य व संस्कृति को हेय समझने लगी थी, ऐसे पराभव युग में बालगंगाधर तिलक ने 'गीता रहस्य', जैनाचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरजी ने 'कर्मयोग', श्रीमद् आत्मारामजी ने 'जैन तत्त्वादर्श' व 'अज्ञान तिमिर भास्कर',[1] महान् मनीषी अरविन्द घोष ने 'सावित्री' महाकाव्य लिखकर पश्चिम-जगत् को अभिभूत कर दिया ।

उस युग में प्रज्ञा महर्षि जैनाचार्य विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी गुरुदेव ने '**अभिधान राजेन्द्र कोष**' की रचना की। उनके द्वारा निर्मित यह अनमोल ग्रन्थराज एक अमरकृति है। यह एक ऐसा विशाल कार्य था, जो एक व्यक्ति की सीमा से परे की बात थी, किन्तु यह दायित्व विश्वपूज्य ने अपने कंधों पर ओढ़ा ।

भारतीय संस्कृति और साहित्य के पुनर्जागरण के युग में विश्वपूज्य ने महान् कोष को रचकर जगत् को ऐसा अमर ग्रन्थ दिया जो चिर नवीन है। यह 'एन साइक्लोपिडिया' समस्त भाषाओं की करुणार्द्र

---

1 अज्ञान तिमिर भास्कर को पढ़कर अंग्रेज विद्वान् हार्नेल इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने श्रीमद् आत्मारामजी को 'अज्ञान तिमिर भास्कर' के अलंकरण से विभूषित किया तथा उन्होंने अपने ग्रन्थ 'उपासक दशांग' के भाष्य को उन्हें समर्पित किया ।

माता संस्कृत, जनमानस में गंग-धारा के समान बहनेवाली जनभाषा अर्धमागधी और जनता-जनार्दन को प्रिय लगनेवाली प्राकृत भाषा - इन तीनों भाषाओं के शब्दों की सुस्पष्ट, सरल और सहज व्याख्या उद्भासित करता है ।

इस महाकोष का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें गीता, मनुस्मृति, ऋग्वेद, पद्मपुराण, महाभारत, उपनिषद, पातंजल योगदर्शन, चाणक्य नीति, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि ग्रन्थों की सुबोध टीकाएँ और भाष्य उपलब्ध हैं । साथ ही आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'चरक संहिता' पर भी व्याख्याएँ हैं ।

'अभिधान राजेन्द्र कोष' की प्रशंसा भारतीय एवं पाश्चात्त्य विद्वान् करते नहीं थकते । इस ग्रन्थ रत्नमाला के सात खण्ड सात अनुपम दिव्य रत्न हैं, जो अपनी प्रभा से साहित्य-जगत् को प्रदीप्त कर रहे हैं ।

इस भारतीय राजर्षि की साहित्य एवं तप-साधना पुरातन ऋषि के समान थी । वे गुफाओं एवं कन्दराओं में रहकर ध्यानालीन रहते थे । उन्होंने स्वर्णगिरि, चामुण्डावन, मांगीतुंगी आदि गुफाओं के निर्जन स्थानों में तप एवं ध्यान-साधना की । ये स्थान वन्य पशुओं से भयावह थे, परन्तु इस ब्रह्मर्षि के जीवन से जो प्रेम और मैत्री की दुग्धधारा प्रवाहित होती थी, उससे हिंस्र पशु-पक्षी भी उनके पास शांत बैठते थे और भयमुक्त हो चले जाते थे ।

ऐसे महापुरुष के चरण कमलों में राजा-महाराजा, श्रीमन्त, राजपदाधिकारी नतमस्तक होते थे । वे अत्यन्त मधुर वाणी में उन्हें उपदेश देकर गर्व के शिखर से विनय-विनम्रता की भूमि पर उतार लेते थे और वे दीन-दुखियों, दरिद्रों, असहायों, अनाथों एवं निर्बलों के लिए साक्षात् भगवान् थे ।

उन्होंने सामाजिक कुरीतियों-कुपरम्पराओं, बुराइयों को समाप्त करने के लिए तथा धार्मिक रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, मिथ्याधारणाओं और कुसंस्कारों को मिटाने के लिए ग्राम-ग्राम, नगर-नगर पैदल विहार कर विभिन्न प्रवचनों के माध्यम से उपदेशामृत की अजस्रधारा प्रवाहित

की। तृष्णातुर मनुष्यों को संतोषामृत पिलाया। कुसंपों के फुफकारते फणिधरों को शांत कर समाज को सुसंप का सुधा-पान कराया।

विश्वपूज्य ने नारी-गरिमा के उत्थान के लिए भी कन्या-पाठशालाएँ, दहेज उन्मूलन, वृद्ध-विवाह निषेध आदि का आजीवन प्रचार-प्रसार किया। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:' के अनुरूप सन्देश दिया अपने प्रवचनों एवं साहित्य के माध्यम से।

गुरुदेव ने पर्यावरण-रक्षण के लिए वृक्षों के संरक्षण पर जोर दिया। उन्होंने पशु-पक्षी के जीवन को अमूल्य मानते हुए उनके प्रति प्रेमभाव रखने के लिए उपदेश दिए। पर्वतों की हरियाली, वन-उपवनों की शोभा, शान्ति एवं अन्तर-सुख देनेवाली है। उनका रक्षण हमारे जीवन के लिए अत्यावश्यक है। इसप्रकार उन्होंने समस्त जीवराशि के संरक्षण के लिए उपदेश दिया।

काव्य विभूषा : उनकी काव्य कला अनुपम है। उन्होंने शास्त्रीय राग-रागिनियों में अनेक सज्झाय व स्तवन गीत रचे हैं। उन्होंने शास्त्रीय रागों में ठुमरी, कल्याण, भैरवी, आशावरी आदि का अपने गीतों में सुरम्य प्रयोग किया है। लोकप्रिय रागिनियों में वनझारा, गरबा, ख्याल आदि प्रियंकर हैं। प्राचीन पूजा गीतों की लावनियों में 'सलूणा', 'रेखता', 'तीरथनी आशातना नवि करिए रे' आदि रागों का प्रयोग मनमोहक हैं। उन्होंने उर्दू की गजल का भी अपने गीतों में प्रयोग किया है।

चैत्यवंदन - स्तुतियों में - दोहा, शिखरणी, स्रग्धरा, मालिनी, पद्धडी प्रमुख हैं। पद्धडी छन्द में रचित श्री महावीर जिन चैत्यवंदन की एक वानगी प्रस्तुत है –

"संसार सागर तार धीर, तुम विण कोण मुझ हरत पीर।
मुझ चित्त चंचल तुं निवार, हर रोग सोग भयभीत वार॥ [1]

एक निश्छल भक्त का दैन्य निवेदन मौन-मधुर है। साथ ही अपने परम तारक परमात्मा पर अखण्ड विश्वास और श्रद्धा-भक्ति को प्रकट करता है।

---

1 जिन - भक्ति - मंजूषा भाग - 1

चौपड़ क्रीड़ा- सज्झाय में अलौकिक निरंजन शुद्धात्म चेतन रूप प्रियतम के साथ विश्वपूज्य की शुद्धात्मा रूपी प्रिया किस प्रकार चौपड़ खेलती है ? वे कहते हैं –

'रंग रसीला मारा, प्रेम पनोता मारा, सुखरा सनेही मारा साहिबा ।
पिउ मोरा चोपड़ इणविध खेल हो ॥
चार चोपड़ चारों गति, पिउ मोरा चोरासी जीवा जोन हो ।
कोठा चोरासिये फिरे, पिउ मोरा सारी पासा वसेण हो ॥'' [1]

यह चौपड़ का सुन्दर रूपक है और उसके द्वारा चतुर्गति रूप संसार में चौपड़ का खेल खेला जा रहा है । साधक की शुद्धात्म-प्रिया चेतन रूप प्रियतम को चौपड़ के खेल का रहस्योद्घाटन करते हुए कहती है कि चौपड़ चार पट्टी और 84 खाने की होती है । इसीतरह चतुर्गति रूप चौपड़ में भी 84 लक्षयोनि रूप 84 घर-उत्पत्ति-स्थान होते हैं। चतुर्गति चौपड़ के खेल को जीतकर आत्मा जब विजयी बन जाती है, तब वह मोक्ष रूपी घर में प्रवेश करती है।

अध्यात्मयोगी संत आनंदघन ने भी ऐसी ही चौपड़ खेली है –

"प्राणी मेरो, खेलै चतुरगति चोपर ।
नरद गंजफा कौन गिनत है, मानै न लेखे बुद्धिवर ॥
राग दोस मोह के पासे, आप वणाए हितधर ।
जैसा दाव परै पासे का, सारि चलावै खिलकर ॥'' [2]

विश्वपूज्य का काव्य अप्रयास हृदय-वीणा पर अनुगुंजित है । 'पिउ' [प्रियतम] शब्द कविता की अंगूठी में हीरककणी के समान मानो जड़ दिया।

विश्वपूज्य की आत्मरमणता उनके पदों में दृष्टिगत होती है । वे प्रकाण्ड विद्वान् - मनीषी होते हुए भी अध्यात्म योगीराज आनन्दघन की तरह अपनी मस्त फकीरी में रमते थे । उनका यह पद मनमोहक है –

'अवधू आतम ज्ञान में रहना,
किसी कु कुछ नहीं कहना ॥' [3]

---

1. जिन भक्ति मंजूषा भाग - 1
2. आनन्दघन ग्रन्थावली
3. जिन भक्ति मंजूषा भाग - 1

'मौनं सर्वार्थ साधनम्' की अभिव्यंजना इसमें मुखरित हुई है। उनके पदों में व्यक्ति की चेतना को झकझोर देने का सामर्थ्य है, क्योंकि वे उनकी सहज अनुभूति से निःसृत हैं। विश्वपूज्य का अंतरंग व्यक्तित्व उनकी काव्य-कृतियों में व्याप्त है। उनके पदों में कबीर-सा फक्कड़पन झलकता है। उनका यह पद द्रष्टव्य है –

"ग्रन्थ रहित निर्ग्रन्थ कहीजे, फकीर फिकर फकनारा।
ज्ञानवास में बसे संन्यासी, पंडित पाप निवारा रे
सद्गुरु ने बाण मारा, मिथ्या भरम विदारा रे ॥" [1]

विश्वपूज्य का व्यक्तित्व वैराग्य और अध्यात्म के रंग में रंगा था। उनकी आध्यात्मिकता अनुभवजन्य थी। उनकी दृष्टि में आत्मज्ञान ही महत्त्वपूर्ण था। 'परभावों में घूमनेवाला आत्मानन्द की अनुभूति नहीं कर सकता। उनका मत था कि जो पर पदार्थों में रमता है वह सच्चा साधक नहीं है। उनका एक पद द्रष्टव्य है –

'आतम ज्ञान रमणता संगी, जाने सब मत जंगी।
पर के भाव लहे घट अंतर, देखे पक्ष दुरंगी ॥
सोग संताप रोग सब नासे, अविनासी अविकारी।
तेरा मेरा कछु नहीं ताने, भंगे भवभय भारी ॥
अलख अनोपम रूप निज निश्चय, ध्यान हिये बिच धरना।
दृष्टि राग तजी निज निश्चय, अनुभव ज्ञानकुं वरना ॥" [2]

उनके पदों में प्रेम की धारा भी अबाधगति से बहती है। उन्होंने शांतिनाथ परमात्मा को प्रियतम का रूपक देकर प्रेम का रहस्योद्घाटन किया है। वे लिखते हैं –

'श्री शांतिजी पिउ मोरा, शांतिसुख सिरदार हो।
प्रेमे पाम्या प्रीतड़ी, पिउ मोरा प्रीतिनी रीति अपार हो ॥
शांति सलूणो म्हारो, प्रेम नगीनो म्हारो, स्नेह समीनो म्हारो नाहलो।
पिउ पल एक प्रीति पमाड हो, प्रीत प्रभु तुम प्रेमनी,
पीउ मोरा मुज मन में नहिं माय हो ॥" [3]

1. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1
2. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1
3. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1

यद्यपि उनकी दृष्टि में प्रेम का अर्थ साधारण-सी भावुक स्थिति न होकर आत्मानुभवजन्य परमात्म-प्रेम है, आत्मा-परमात्मा का विशुद्ध निरूपाधिक प्रेम है। इसप्रकार, विश्वपूज्य की कृतियों में जहाँ-जहाँ प्रेम-तत्त्व का उल्लेख हुआ है, वह नर-नारी का प्रेम न होकर आत्म-ब्रह्म-प्रेम की विशुद्धता है।

विश्वपूज्य में धर्म सद्भाव भी भरपूर था। वे निष्पक्ष, निस्पृही मानव-मानव के बीच अभेद भाव एवं प्राणि मात्र के प्रति प्रेम-पीयूष की वर्षा करते थे। उन्होंने अरिहन्त, अल्लाह-ईश्वर, रूद्र-शिव, ब्रह्मा-विष्णु को एक ही माना है। एक पद में तो उन्होंने सर्व धर्मों में प्रचलित परमात्मा के विविध नामों का एक साथ प्रयोग कर समन्वय-दृष्टि का अच्छा परिचय दिया है। उनकी सर्व धर्मों के प्रति समादरता का निम्नांकित पद मननीय है –

'ब्रह्म एक छे लक्षण लक्षित, द्रव्य अनंत निहारा।
सर्व उपाधि से वर्जित शिव ही, विष्णु ज्ञान विस्तारा रे॥
ईश्वर सकल उपाधि निवारी, सिद्ध अचल अविकारा।
शिव शक्ति जिनवाणी संभारी, रूद्र है करम संहारा रे॥
अल्लाह आतम आपहि देखो, राम आतम रमनारा।
कर्मजीत जिनराज प्रकासे, नयथी सकल विचारा रे॥'[1]

विश्वपूज्य के इस पद की तुलना संत आनंदघन के पद से की जा सकती है।[2]

यह सच है कि जिसे परमतत्त्व की अनुभूति हो जाती है, वह संकीर्णता के दायरे में आबद्ध नहीं रह सकता। उसके लिए राम-कृष्ण, शंकर-गिरीश, भूतेश्वर, गोविन्द, विष्णु, ऋषभदेव और महादेव

---

1 जिन भक्ति मंजूषा भाग - 1 पृ. 72

2 'राम कहौ रहिमान कहौ, कोउ कान्ह कहौ महादेव री।
पारसनाथ कहौ कोउ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेवरी॥
भाजन भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री।
तैसे खण्ड कलपना रोपित, आप अखण्ड सरूप री॥
निज पद रमै राम सो कहिये, रहम करे रहमान री।
करषै करम कान्ह सो कहियै, महादेव निरवाण री॥
परसै रूप सो पारस कहियै, ब्रह्म चिन्है सो ब्रह्म री।
इहविध साध्यो आप आनन्दघन, चेतनमय निःकर्मरी॥' आनंदघन ग्रन्थावली, पद ६५

या ब्रह्म आदि में कोई अन्तर नहीं रह जाता है। उसका तो अपना एक धर्म होता है और वह है – आत्म-धर्म (शुद्धात्म-धर्म)। यही बात विश्वपूज्य पर पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है। सामान्यतया जैन परम्परा में परम तत्त्व की उपासना तीर्थंकरों के रूप में की जाती रही है; किन्तु विश्वपूज्य ने परमतत्त्व की उपासना तीर्थंकरों की स्तुति के अतिरिक्त शंकर, शंभु, भूतेश्वर, महादेव, जगकर्ता, स्वयंभू, पुरूषोत्तम, अच्युत, अचल, ब्रह्म-विष्णु-गिरीश इत्यादि के रूप में भी की है। उन्होंने निर्भीक रूप से उद्घोषणा की है –

"शंकर शंभु भूतेश्वरो ललना, मही माहें हो वली किस्यो महादेव,
जिनवर ए जयो ललना।
जगकर्ता जिनेश्वरो ललना, स्वयंभू हो सहु सुर करे सेव,
जिनवर ए जयो ललना॥
वेद ध्वनि वनवासी ललना, चौमुखे हो चारे वेद सुचंग, जिन.।
वाणी अनक्षरी दिलवसी ललना, ब्रह्माण्डे बीजो ब्रह्म विभंग, जि.॥
पुरूषोत्तम परमातमा ललना, गोविन्द हो गिरूवो गुणवंत, जि.।
अच्युत अचल छे ओपमा ललना, विष्णु हो कुण अवर कहंत, जि.॥
नाभेय रिषभ जिणंदजी ललना, निश्चय थी हो देख्यो देव दमीश।
एहिज सूरिशजेन्द्र जी ललना, तेहिज हो ब्रह्मा विष्णु गिरीश, जि.॥"[1]

वास्तव में, विश्वपूज्य ने परमात्मा के लोक प्रसिद्ध नामों का निर्देश कर समन्वय-दृष्टि से परमात्म-स्वरूप को प्रकट किया है।

इसप्रकार कहा जा सकता है कि विश्वपूज्य ने धर्मान्धता, संकीर्णता, असहिष्णुता एवं कूपमण्डूकता से मानव-समाज को ऊपर उठाकर एकता का अमृतपान कराया। इससे उनके समय की राजनैतिक एवं धार्मिक परिस्थिति का भी परिचय मिलता है।

'अभिधान राजेन्द्र कोष' कथाओं का सुधासिन्धु है। कथाओं में जीवन को सुसंस्कृत, सभ्य एवं मानवीय गुण-सम्पदा से विभूषित करने का सरस शैली में अभिलेखन हुआ है। कथाएँ इक्षुरस के समान मधुर, सरस और सहज शैली में आलेखित हैं। शैली में प्रवाह हैं, प्राकृत और संस्कृत शब्दों को हीरक कणियों के समान तराश कर

1 जिन भक्ति मंजूषा भाग - 1 पृ. ~~

कथाओं को सुगम बना दिया है ।

उपसंहार :

विश्वपूज्य अजर-अमर है । उनका जीवन 'तप्तं तप्तं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्त वर्णम्' की उक्ति पर खरा उतरता है । जीवन में तप की कंचनता है, कवि-सी कोमलता है । विद्वत्ता के हिमाचल में से करुणा की गंग-धारा प्रवाहित है ।

उन्होंने जगत् को 'अभिधान राजेन्द्र कोष' रूपी कल्पतरू देकर इस धरती को स्वर्ग बना दिया है, क्योंकि इस कोष में ज्ञान-भक्ति और कर्मयोग का त्रिवेणी संगम हुआ है । यह लोक माङ्गल्य से भरपूर क्षीर-सागर है । उनके द्वारा निर्मित यह कोष आज भी आकाशी ध्रुवतारे की भाँति टिमटिमा रहा है और हमें सतत दिशा-निर्देश दे रहा है ।

विश्वपूज्य के लिए अनेक अलंकार ढूँढ़ने पर भी हमें केवल एक ही अलंकार मिलता है – वह है – अनन्वय अलंकार – अर्थात् विश्वपूज्य विश्वपूज्य ही है ।

उनका स्वर्गवास 21 दिसम्बर सन् 1906 में हुआ, परन्तु कौन कहता है कि विश्वपूज्य विलीन हो गये ? वे जन-जन के श्रद्धा केन्द्र सबके हृदय-मंदिर में विद्यमान हैं !



अभिधान राजेन्द्र कोष में,

सूक्ति-सुधारस

(चतुर्थ खण्ड)

1. यज्ञ-प्रकार

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो देवो बलि भूतो नृयज्ञोऽतिथि पूजनम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1389]
— ***मनुस्मृति 3/70***

अध्यापन ब्रह्मयज्ञ है, तर्पण पितृयज्ञ है; होम देवयज्ञ है; बलि भूतयज्ञ और आतिथ्यपूजा नृयज्ञ है ।

2. विभिन्न रुचि-सम्पन्न जन

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञाः योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च, यतयः संशितव्रताः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1389]
— ***भगवद्गीता - 4/28***

कई पुरुष ईश्वर-अर्पण-बुद्धि से लोकसेवा मे द्रव्ययज्ञ को (द्रव्य लगानेवाले) करनेवाले हैं, वैसे ही कई पुरुष स्वधर्मपालन रूप तपयज्ञ को करनेवाले हैं और कई अष्टांग योगरूप योगयज्ञ करनेवाले हैं तथा दूसरे अहिंसादि तीक्ष्ण व्रतों से युक्त यत्नशील पुरुष स्वाध्याय यज्ञ और ज्ञानयज्ञ को करनेवाले हैं ।

3. मेरी वास्तविक यात्रा

जं मे तव-नियम-संजम-सज्झाय-झाणा ।
वस्सगमादीएसु जोएसु, जयणा से तं जत्ता ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1390]
— ***भगवती 18/10/18***

तप, नियम, संयम, स्वाध्याय, ध्यान, आवश्यक आदि योगों में जो विवेकयुक्त प्रवृत्ति है, वह मेरी वास्तविक यात्रा है ।

4. पञ्च यम

अहिंसा-सत्यऽस्तेय-ब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा यमाः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1391]

— *योगदर्शन 2/30*

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (अचौर्य), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह-ये पाँच यम हैं।

5. सार्वभौमिक व्रत

एते तु जातिदेशकालसमया
न वच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1391]
— *योगदर्शन - 2/31*

जाति, देश, काल और समय आदि की सीमा से रहित सार्वभौम (सदा और सर्वत्र) होने पर ये ही अहिंसा, सत्य आदि महाव्रत हो जाते हैं।

6. स्वर्ग से महान्

जननी जन्मभूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1415]
— *वाचस्पत्यभिधान (कोश)*

जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है।

7. धर्मनिष्ठ-धर्मविहीन आत्मा

अत्थेगतियाणं जीवाणं बलियत्तं साहू,
अत्थेगतियाणं जीवाणं दुब्बलियत्तं साहू ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1417]
— *भगवती 12/2/19*

धर्मनिष्ठ आत्माओं का बलवान् होना अच्छा है और धर्महीन आत्माओं का दुर्बल रहना।

8. ब्राह्मण कौन ?

जो न सज्जइ आगंतुं, पव्वयं तो न सोयई ।
रमइ अज्ज-वयणम्मि, तं वयं बूम माहणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1420]
— *उत्तराध्ययन 25/20*

जो स्नेही-जनों के आने पर आसक्त नहीं होता और उनके जाने पर शोक नहीं करता। जो आर्य-वचन में रमण करता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

9. वही ब्राह्मण

जायरूवं जहामट्ठं निद्धन्तमलपावगं ।
राग-दोस भयातीयं, तं वयं बूम माहणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1420]
— *उत्तराध्ययन 25/21*

जो कसौटी पर कसे हुए और अग्नि में तपाकर शुद्ध किए हुए स्वर्ण की तरह विशुद्ध है तथा राग-द्वेष और भय से रहित है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

10. ब्राह्मण कौन ?

तसे पाणे वियाणित्ता, संगहेण य थावरे ।
जो न हिंसइ तिविहेणं, तं वयं बूम माहणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1420]
— *उत्तराध्ययन 25/23*

जो त्रस और स्थावर जीवों को संक्षेप और विस्तार से भली-भाँति जानकर मन-वाणी और शरीर से उनकी हिंसा नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

11. धर्ममुख, काश्यप

धम्माणं कासवो मुहं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1420]
— *उत्तराध्ययन 25/16*

इस भरतक्षेत्र की अपेक्षा से धर्मों का मुख (आदिस्रोत) काश्यप अर्थात् श्री ऋषभदेव भगवान् हैं।

12. ब्राह्मण कौन ?

तवस्सियं किसं दन्तं, अवचियमंससोणियं ।
सुव्वयं पत्तनिव्वाणं, तं वयं बूम माहणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 1420]**

— ***उत्तराध्ययन 25/22***

जो तपस्वी कृशकाय और इन्द्रियों का दमन करनेवाला है, जिसका माँस और रुधिर कम हो चुका है, जो व्रतशील व शान्त है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

13. बाह्याचार

नवि मुंडिएण समणो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 1421]**

— ***उत्तराध्ययन 25/31***

सिर मुंडा लेने से कोई श्रमण नहीं होता।

14. श्रमण कौन ?

समियाए समणो होइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 1421]**

— ***उत्तराध्ययन 25/32***

समभाव की साधना करने से श्रमण होता है।

15. कर्म से वर्ण

कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो होइ उ कम्मुणा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1421]

— ***उत्तराध्ययन 25/33***

मनुष्य कर्म से ही ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षत्रिय। कर्म से ही वैश्य होता है और कर्म से ही शुद्र !

16. ब्राह्मण कौन ?

दिव्वमाणुसत्तेरिच्छं, जो न सेवइ मेहुणं ।
मणसाकायवक्केणं, तं वयं बूम माहणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1421]

— ***उत्तराध्ययन 25/26***

जो देव, मनुष्य और तिर्यञ्च सम्बन्धी मैथुन का मन वचन और काया से कभी सेवन नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

17. ब्राह्मण कौन ?

अलोलुयं मुहाजीवी, अणगारं अकिंचणं ।
असंसत्तं गिहत्थेसु, तं वयं बूम माहणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1421]
— *उत्तराध्ययन 25/28*

जो मनुष्य लोलुप नहीं है, जो मुधाजीवी (निर्दोष भिक्षावृत्ति से निर्वाह करता) है, जो गृहत्यागी है, जो अकिंचन है, जो गृहस्थों में अनासक्त है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

18. दुश्चरित्री, अशरण

न तं तायन्ति दुस्सीलं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1421]
— *उत्तराध्ययन 25/30*

दुराचारी को कोई नहीं बचा सकता।

19. ब्राह्मण कौन ?

कोहा वा जइ वा हासा, लोभा वा जइ वा भया ।
मुसं न वयई जोउ, तं वयं बूम माहणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1421]
— *उत्तराध्ययन 25/24*

जो क्रोध से, हास्य से अथवा भय आदि किसी भी अशुभ संकल्प से मिथ्याभाषण नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

20. ब्राह्मण कौन ?

चित्तमंतमचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहुं ।
न गिण्हेति अदत्तं जे, तं वयं बूम माहणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1421]
— *उत्तराध्ययन 25/25*

सचित्त या अचित्त कोई भी पदार्थ थोड़ा हो या ज्यादा, कितना ही क्यों न हो, जो स्वामी के दिए बिना चोरी से नहीं लेता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

21. कर्म बलवान्

कम्माणि बलवन्ति हि ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1421]

– *उत्तराध्ययन - 25/30*

निश्चय ही कर्म बलवान् है ।

22. तापस नहीं

कुसचीरेण न तावसो ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1421]

– *उत्तराध्ययन 25/31*

कुश-चीवर-वल्कलादि वस्त्र पहनने मात्र से कोई तापस नहीं होता ।

23. ब्राह्मण नहीं

न ओंकारेण बंभणो ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1421]

– *उत्तराध्ययन 25/31*

ओंकार का जाप करने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं होता ।

24. मुनि नहीं

न मुणी रण्णवासेणं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1421]

– *उत्तराध्ययन - 25/31*

केवल जंगल में रहने से ही कोई मुनि नहीं हो जाता ।

25. ज्ञान से मुनि

नाणेण य मुणी होइ ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1421]

– *उत्तराध्ययन - 25/32*

ज्ञान की आराधना करने से मुनि होता है।

26. **तप से तापस**

तवेणं होइ तावसो।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1421]

— *उत्तराध्ययन - 25/32*

तप का आचरण करने से तापस होता है।

27. **ब्राह्मण**

बम्भचेरेण बम्भणो।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1421]

— *उत्तराध्ययन 25/32*

ब्रह्मचर्य के पालन से ब्राह्मण होता है।

28. **ब्राह्मण वही**

जहा पोमं जले जायं, नोवलिप्पइ वारिणा।
एवं अलित्तकामेहिं, तं वयं बूम माहणं॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1421]

— *उत्तराध्ययन 25/27*

ब्राह्मण वही है-जो संसार में रहकर भी काम-भोगों से निर्लिप्त रहता है, जैसे कि कमल जल में रहकर भी उससे लिप्त नहीं होता।

29. **कामासक्त मानव**

एवं लग्गंति दुम्मेहा जे नरा कामलालसा।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1422]
एवं 2699

— *उत्तराध्ययन 25/43*

जो मनुष्य दुर्बुद्धि और काम-लालसा में आसक्त हैं, वे विषयों मे चिपक जाते हैं।

30. **भोगी**

उवलेवो होइ भोगेसु।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1422]
— *उत्तराध्ययन 25/41*

जो भोगी (भोगासक्त) है, वह कर्मों से लिप्त होता है।

31. विरक्त साधक

विरत्ता उ न लग्गंति, जहा से सुक्कगोलए।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1422] एवं 2699
— *उत्तराध्ययन 25/43*

मिट्टी के सूखे गोले के समान विरक्त साधक कहीं भी चिपकता नही है अर्थात् आसक्त नहीं होता।

32. अभोगी

अभोगी नोवलिप्पई।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1422]
— *उत्तराध्ययन 25/41*

जो भोगासक्त नहीं है; वह कर्मों से लिप्त नहीं होता है।

33. भोगी भटके

भोगी भमइ संसारे।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1422]
— *उत्तराध्ययन 25/41*

भोगी संसार में भटकता है।

34. मुक्त कौन ?

अभोगी विप्पमुच्चइ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1422]
— *उत्तराध्ययन - 25/41*

भोगों में अनासक्त ही संसार से मुक्त होता है।

35. अयतना से हिंसा

अजयं चरमाणो उ पाणभूयाइं हिंसई।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1422]

— ***दशवैकालिक 4/24***

अयतनापूर्वक चलनेवाला साधु त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा करता है।

36. जयणा

तव वुड्ढिकरी जयणा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1423]

— ***सम्बोध सत्तरि 67***

जयणा तपोवृद्धिकारिणी है।

37. दिनचर्या ऐसी हो ?

जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए ।
जयं भुंजंतो भासंतो, पावकम्मं न बंधइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1423]

— ***दशवैकालिक 4/31***

चलना, खड़ा होना, बैठना, सोना, भोजन करना और बोलना आदि सभी प्रवृत्तियाँ यतनापूर्वक करते हुए साधक को पाप-कर्म का बंध नहीं होता।

38. जयणा, धर्ममाता

जयणा य धम्म जणणी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1423]

— ***संबोधसत्तरि 67***

जयणा धर्म की माता है।

39. यतना

जयणा धम्मस्स पालणी चेव ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1423]

— ***संबोधसत्तरि-67***

यतना धर्म का पालन करनेवाली है।

40. दिनचर्या कैसी हो ?

कहं चरे ? कहं चिट्ठे ? कह मासे ? कहं सए ?
कहं भुंजंतो भासंतो, पावकम्मं न बंधई ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1423]
— ***दशवैकालिक 4/30***

कैसे चले ? कैसे बैठे ? कैसे खड़े रहे ? कैसे सोए ? कैसे खाए ?और कैसे बोले ? जिससे पापकर्म-बन्ध न हो ।

41. यतना, सुखदायिनी

एगंत सुहावहा जयणा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1423]
— ***संबोधसत्तरि-67***

यतना एकान्त सुखदायिनी होती है ।

42. जातिस्मरण ज्ञान

पुव्वभवा सो पिच्छइ, इक्को दो तिन्नि जाव नवगं वा
उवरिम तस्स अविसओ, सहावओ जाइ सरणस्स ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1445]
— ***सेनप्रश्न 341 3 उल्ला.***

जातिस्मरण ज्ञानवाला व्यक्ति एक, दो, तीन यावत् पिछले नव भव देख लेता है । इससे आगे जातिस्मरण ज्ञान में देखने की शक्ति स्वभाव से ही नहीं है ।

43. सुप्तदशा

नेरइया सुत्ता नो जागरा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1446]
— ***भगवती 16/6/4***

आत्म-जागरण की दृष्टि से नारक जीव सोते रहते हैं, जागते नहीं ।

44. अनमेल

णालस्सेणं समं सोक्खं ण विज्जासह निद्दया ।
ण वेरग्गं पमादेणं णारंभणे दयालुआ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1447]
— ***निशीथभाष्य 5307***
बृहदावश्यकभाष्य 3385

आलस्य के साथ सुख का, निद्रा के साथ विद्या का, प्रमाद (ममत्व) के साथ वैराग्य का और हिंसा के साथ दयालुता का कोई मेल नहीं है ।

45. जागरूकता

जागरहा णरा णिच्चं, जागरमाणस्स वड्ढए बुद्धी ।
जो सुअइ ण सो धणो, जो जग्गइ सो सया धणो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1447]
— ***निशीथभाष्य 5303***
बृहदावश्यकभाष्य 3283

मनुष्यों ! सदा जागते रहो, जागनेवाले की बुद्धि सदा वर्धमान रहती है । जो सोता है, वह सुखी नहीं होता । जागृत रहनेवाला ही सदा सुखी रहता है ।

46. श्रुतज्ञान, सुप्त-स्थिर

सुअइ सुअंतस्स सुअं संकिअ खलिअं भवे पमत्तस्स ।
जागरमाणस्स सुअं, थिरपरिचियमप्पमत्तस्स ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1447]
— ***निशीथभाष्य 5304***
बृहदावश्यकभाष्य 3384

सोते हुए का श्रुतज्ञान सुप्त रहता है । प्रमत्त का ज्ञान शंकित एवं स्खलित हो जाता है । जो अप्रमत्तभाव से जाग्रत रहता है, उसका ज्ञान सदा स्थिर एवं परिचित रहता है ।

47. सोवत-खोवत

सुवइ य अजगरभूओ, सुयं पि से णस्सती अमयभूया।
हो ही गोणतभूओ, णट्ठम्मि सुए अमयभूए॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1447]
— ***निशीथभाष्य 5305***
— ***बृहदावश्यकभाष्य 3387***

जो अजगर के समान सोया रहता है, उसका अमृतस्वरूप श्रुत (ज्ञान) नष्ट हो जाता है और अमृतस्वरूप श्रुत के नष्ट हो जाने पर व्यक्ति एक तरह से निरा बैल हो जाता है।

48. किसके लिए क्या अच्छा ?

जागरित्ता धम्मीणं अधम्मियाणं च सुत्तिया सेया।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1447-48]
— ***निशीथभाष्य 5306***
— ***बृहदावश्यकभाष्य 3386***

धार्मिक व्यक्तियों का जागते रहना अच्छा है और अधार्मिकजनों का सोते रहना।

49. जागते रहो !

जागरह णरा णिच्चं।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1447]
— ***निशीथभाष्य 5303***
— ***बृह. भाष्य 3283***

मनुष्यों ! सदा जागते रहो।

50. कौन सोए ? कौन जागे ?

अत्थेगतियाणं जीवाणं सुत्तत्तं साहू।
अत्थेगतियाणं जीवाणं जागरियत्तं साहू॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1448]
— ***भगवती - 12/2/18 [2]***

अधार्मिक आत्माओं का सोते रहना अच्छा है और धर्मनिष्ठ आत्माओं का जागते रहना।

51. सर्वत्र प्रतिष्ठित

कत्थ व न जलइ अग्गी, कत्थ व चंदो न पायडो होइ।
कत्थ वर लक्खणधरा, न पायडा होंति सप्पुरिसा॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1464]

— ***बृहदावश्यकभाष्य 1245***

अग्नि कहाँ नहीं जलती है ? चन्द्रमा कहॉ प्रकाश नहीं करता है ? और श्रेष्ठ लक्षणों (गुणों) से युक्त सत्पुरुष कहॉ पर प्रतिष्ठा नहीं पाते हैं ? अर्थात् सर्वत्र प्रतिष्ठा पाते हैं।

52. विद्वान् सर्वत्र शोभते

सुक्किं धणम्मि दिप्पइ, अग्गी मेहरहिओ ससि भाइ।
तव्विह जाण य निउणे, विज्जा पुरिसा विभायंति॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1464]

— ***बृहदावश्यकभाष्य 1247***

सूखे ईंधन में अग्नि प्रज्ज्वलित होती है, बादलों से रहित स्वच्छ आकाश में चन्द्र प्रकाशित होता है, इसीप्रकार चतुर लोगों में विद्वान् शोभा (यश) पाते हैं।

53. निपुण घुड़सवार

को नाम सारहीणं, स होई जो भद्दवाइणोदमए।
दुट्ठे वि उ जो आसे, दमेइ तं आसियं बिंति॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1468]

— ***बृहदावश्यकभाष्य 1275***

उस आश्विक (घुड़सवार) का क्या महत्त्व है ? जो सीधे-सादे घोड़ों को काबू में रखता है। वास्तव में घुड़सवार तो उसे कहा जाता है, जो दुष्ट (अड़ियल) घोड़ों को भी काबू में किए चलता है।

54. धैर्यवान्

तं तु न विज्जइ सज्झं, जं धिइमंतो न साहेइ ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 1471]

– *बृहत्कल्पभाष्य 1357*

वह कौन-सा कठिन कार्य है, जिसे धैर्यवान् व्यक्ति सम्पन्न नहीं कर सकता ?

55. अल्पाहारी

अप्पाहारस्स ण इंदिआइं विसएसु संपयट्टंति ।
न अ किलम्मइ तवसा रसिएसु न सज्जई आवि ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 1478]

– *बृहदावश्यकभाष्य 1331*

जो अल्पाहारी होता है, उसकी इन्द्रियाँ विषयभोग की ओर नहीं दौड़ती, तप का प्रसंग आने पर भी वह क्लांत नहीं होता और न ही सरस भोजन में आसक्त होता है ।

56. परिमित संसारी

जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवयणं जे करेंति भावेणं ।
अमला असंकिलेट्ठा, ते होंति परित्तसंसारी ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 1502]

– *उत्तराध्ययन 36/260*

जो जिनवचन में अनुरक्त है और जो श्रद्धापूर्वक (भावसे) जिनवचन को स्वीकार करता है, जो मल (राग-द्वेषरहित) और संक्लेश रहित है, वह परिमित संसारी होता है ।

57. जिन-प्रवचन

भद्दं मिच्छदंसण-समूह मइयस्स अमयसारस्स ।
जिणवयणस्स भगवओ, संविग्ग सुहाहिगम्मस्स ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 1503]

– *सन्मतितर्क 3/69*

विभिन्न मिथ्यादर्शनों का समूह, अमृत के समान क्लेश का नाशक और मुमुक्षु आत्माओं के लिए सहज सुबोधक भगवान् जिनप्रवचन का मंगल हो ।

58. चैतन्य

जीवे ताव नियमा जीवे, जीवे वि नियमा जीवे ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1519-1520]

– ***भगवती** 6/10/2*

जो जीव है, वह निश्चित रूपसे चैतन्य है और जो चैतन्य है वह निश्चित रूप से जीव है ।

59. क्षमा

अम्मापिउणो सरिसा, सव्वेवि खमंतु मे जीवा ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1536]

– ***संस्तारक प्रकीर्णक** - 91*

माता-पिता के समान सभी जीव मुझे क्षमाप्रदान करें ।

60. जीवाजीवज्ञ, संयमज्ञ

जो जीवे वि वियाणइ, अजीवे वि वियाणइ ।
जीवाऽजीवे वियाणंतो, सोहु नाहीइ संजमं ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1561]
एवं भाग 5 पृ. 1190

– ***दशवैकालिक** 4/13*

जो जीवों को भी जानता है, और अजीवों को भी जानता है, वह जीव और अजीव दोनों को जाननेवाला संयम को भी सम्यक् प्रकार से जान लेता है ।

61. लोकालोक स्वरूप

जीवा चेव अजीवा य, एस लोए वियाहिए ।
अजीव देसमागा से, अलोए से वियाहिए ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1561]

— *उत्तराध्ययन 36/2*

जिस आकाश के भाग में जीव-अजीव (जड़-चेतन) दोनों रहते हो, उसे लोक कहते हैं और जहाँ आकाश ही हो, धर्म-अधर्म आदि न हो, उसे अलोक कहते हैं।

62. वैर-त्याग

भूतेहिं न विरुज्झेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1565]

— *सूत्रकृतांग 1/15/4*

किसी भी प्राणी के साथ वैरभाव मत रखो ।

63. भय-मुक्त साधक

जीवियासामरणभय विप्पमुक्का ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1566]

— *भगवती 8/7/3*

सच्चे साधक जीवन की आशा और मृत्यु के भय से सर्वथा मुक्त होते हैं।

64. कर्म-कौशल

योगः कर्मसु कौशलम् ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1613]

— *भगवद्गीता 2/50*

कुशलतापूर्वक किया गया कार्य योग है।

65. उदारचेता पुरुषों की पहचान

अयं निजः परोवेत्ति, गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु, वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1617]

— *हितोपदेश-मित्रलाभ 71*

हल्के चित्तवाले लोगों की-'यह अपना है-यह पराया है'-ऐसी बुद्धि होती है। उदार चित्तवाले तो समग्र पृथ्वी के लोगों को ही अपना कुटुम्बीजन मानते हैं।

66. योग, मोक्ष-हेतु

मोक्षहेतुर्यतो योगो भिद्यते न ततः क्वचित् ।
साध्याभेदात् तथाभावे तूक्तिभेदो न कारणम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1618]
— *योगबिन्दु-3*

योग मोक्ष का हेतु है। परम्पराओं की भिन्नता के बावजूद मूलत: उसमें कोई भेद नहीं हैं। जब सभी के साध्य या लक्ष्य में कोई भेद नहीं है, वह एक समान है, तब उक्तिभेद, कथन-भेद या विवेचन की भिन्नता वस्तुत: उसमें कोई भेद नहीं ला पाती।

67. योग-लक्षण

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1621]
— *पातंजलयोगदर्शन* - 1/2

चित्तवृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं।

68. योगाचार

मोक्षेण योजनाद् योगः सर्वोऽप्याचार इष्यते ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1625]
— *ज्ञानसार* - 27/1

मोक्ष के साथ आत्मा को जोड़ने से सारे आचरण भी योग कहलाते हैं।

69. कर्म-फल

अवश्यमेव भोक्तव्यं, कृतं कर्मशुभाशुभम् ।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म, कल्पकोटिशतैरपि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1633]
— *धर्मबिन्दु* - 1/11 [11]

करोड़ों युगों के व्यतीत हो जाने पर भी किए हुए कर्मों का क्षय नहीं होता। अपने किए हुए शुभाशुभ कर्म अवश्य ही भोगने पड़ते हैं।

70. योग सर्वस्व

योगः कल्पतरु श्रेष्ठो योगश्चिंतामणिपरः ।
योगः प्रधानं धर्माणां, योगः सिद्धे स्वयंग्रह ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1634]
— ***योगबिन्दु*** *- 37*

योग उत्तम कल्पवृक्ष है, उत्कृष्ट चिन्तामणि रत्न है जो कल्पवृक्ष तथा चिन्तामणि रत्न की तरह साधक की इच्छाओं को पूर्ण करता है, वह योग सब धर्मों में मुख्य है तथा सिद्धि का अनन्य हेतु है ।

71. योग-शक्ति

तथा च जन्मबीजाग्निर्जरसोऽपि जरा परा ।
दुःखानां राजयक्ष्माऽयं मृत्योर्मृत्युरुदाहृतः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1634]
— ***योगबिन्दु*** *- 38*

जन्मरूपी बीज के लिए योग अग्नि है । वह बुढ़ापे का भी बुढ़ापा है, दुःखों के लिए राजयक्ष्मा है, एवं मृत्यु का भी मृत्यु है ।

72. योग-माहात्म्य

कुण्ठीभवन्ति तीक्ष्णानि, मन्मथास्त्राणि सर्वथा ।
योगवर्माऽऽवृते चित्ते तपश्छिद्रकराण्यपि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1634]
— ***योगबिन्दु*** *39*

मासक्षमणादि तप करनेवाले तपस्वियों को तपोभ्रष्ट करनेवाले कामदेव के कामविकार रूप तीक्ष्ण शस्त्र (शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श) भी, जिन्होंने योग का कवच पहना है उनके चित्त पर, असर नहीं करते, उनके सामने वे कामशास्त्र भोथरे बन जाते हैं ।

73. योग-लाभ

किं चान्यद् योगतः स्थैर्यं धैर्यं श्रद्धा च जायते ।
मैत्रीजनप्रियत्वं च प्रातिभं तत्त्वं भासनम् ॥

विनिवृत्ताग्रहत्वं च तथा द्वन्द्वसहिष्णुता ।
तदभावश्च लाभश्च बाह्यानां कालसंगतः ॥
धृति क्षमा सदाचारो योगवृद्धि शुभोदया ।
आदेयता गुरुत्वं च शमसौख्यमनुत्तमम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1636]

— *योगबिन्दु 52-53-54*

अधिक क्या कहा जाए ? योग से स्थिरता, धीरज, श्रद्धा-मैत्री, लोकप्रियता, प्रतिभा-अन्तःस्फुरणा-अन्तर्ज्ञान द्वारा तत्त्व-प्रकाशन, आग्रहहीनता, अनुकूल से वियोग, प्रतिकूल का संयोग जैसे विषम द्वन्द्वों को सहनशीलता के साथ झेलना, वैसे कष्टों का नहीं आना, यथासमय अनुकूल बाह्य स्थितियाँ प्राप्त होना, सन्तोष, क्षमाशीलता, सदाचार, उत्तम फलमय योगवृद्धि, औरों की दृष्टि में आदेयभाव, आदर्श पुरुष के रूप में समादर, गुरुत्व-गौरव-प्रतिष्ठा, सर्वोत्तम प्रशम-सुख तथा अनुपम शान्ति की अनुभूति-ये सब प्राप्त होते हैं ।

74. योगाङ्ग

यम-नियमाऽऽसन प्राणायाम प्रत्याहार ।
धारणा-ध्यान-समाध्योऽष्टावङ्गानि योगस्थेति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1638]

— *पातंजल योगदर्शन 2/29*

योग के आठ अङ्ग हैं-

(१) यम (२) नियम (३) आसन (४) प्राणायाम (५) प्रत्याहार (६) धारणा (७) ध्यान और समाधि ।

75. योगसत्य

जोगसच्चेणं जोगं विसोहेइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1650]

— *उत्तराध्ययन - 29/53*

योगसत्य से जीव मन-वचन और काया की प्रवृत्ति को विशुद्ध करता है ।

76. अनुपम ध्यानी

जितेन्द्रियस्य धीरस्य, प्रशान्तस्य स्थिरात्मनः ।
सुखासनस्य नासाग्रन्यस्त नेत्रस्य योगिनः ॥
रुद्रबाह्यमनोवृत्तै र्धारणा धारया रयात् ।
प्रसन्नस्याऽप्रमत्तस्य चिदानन्द सुधालिहः ॥
साम्राज्यमप्रतिद्वन्द्वमन्तरेव वितन्वतः ।
ध्यानिनो नोपमा लोके सदेव मनुजेऽपि हि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1673]

— *ज्ञानसार 30/6-7-8*

जो जितेन्द्रिय हैं, धैर्ययुक्त हैं, और अत्यन्त शान्त हैं, जिसकी आत्मा अस्थिरता रहित हैं. जो सुखासन पर विराजमान हैं, जिसने नासिका के अग्रभाग पर लोचन स्थापित किए हैं और जो योगसहित हैं।

ध्येय में जिसने चित्त की स्थिरतारूप धारा से वेगपूर्वक बाह्य इन्द्रियों का अनुसरण करनेवाली मानसिक-वृत्ति को रोक लिया हैं, जो प्रसन्नचित्त हैं, प्रमादरहित और ज्ञानानन्द रूपी अमृतास्वादन करनेवाला हैं. जो अन्तःकरण में ही विपक्षरहित चक्रवर्तित्व का विस्तार करता है, ऐसे ध्यानी की, देव-मनुष्यलोक में भी सचमुच अन्य कोई-उपमा नहीं है।

77. यथा राजा तथा प्रजा

गतानुगतिकाः प्रायो, दृष्यन्ते बहवो नराः ।
स्वभूपमनुवर्त्तन्ते, यथा राजा तथा प्रजा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1798]

— *उत्तराध्ययनसूत्र सटीक 9 अध्ययन*

अधिकांश मनुष्य गड़रिया प्रवाहवाले होते हैं और अपने स्वामी का ही अनुसरण करते हैं। सच है, जैसा राजा होता है वैसी ही जनता होती है।

78. प्रबुद्ध सक्षम

बुद्धो भोए परिच्चइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1811]

— ***उत्तराध्ययन 9/3***

ज्ञानी पुरुष ही भोग का परित्याग कर सकते हैं।

79. न प्रिय, न अप्रिय

पियं न विज्जई किंचि,

अप्पियं पि न विज्जइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1813]

— ***उत्तराध्ययन 9/15***

महात्मा के लिए न कोई प्रिय होता है और न कोई अप्रिय होता है।

80. संशयात्मा

संसयं खलु जो कुणइ, जो मग्गे कुणइ घरं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1814]

— ***उत्तराध्ययन 9/26***

साधना में सन्देह वही करता है, जो मार्ग में ही घर करना (ठहरना) चाहता है।

81. तप, धनुषबाण

तवनारायजुत्तेणं भेत्तूणं कम्मकंचुयं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1814]

— ***उत्तराध्ययन 9/22***

तपरूपी लोह बाण से युक्त धनुष के द्वारा कर्म रूपी कवच को भेद डाले।

82. शाश्वत निवास

जत्थेवं गन्तुमिच्छेज्जा तत्थ कुव्वेज्ज सासयं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1814]

— ***उत्तराध्ययन 9/26***

जहाँ जाना चाहते हो, वहीं अपना शाश्वत घर बनाओ।

83. कर्म-युद्ध

सद्धं नगरं किच्चा, तव-संवरमग्गलं ।
खंति निउणंपागारं, तिगुत्तं दुप्पहं सयं ॥
धणुं परक्कमं किच्चा जीवं च इरियं सया ।
धिइं च केयणं किच्चा, सच्चेणं पलिमंथए ।
तवनारायजुत्तेणं, भेत्तूणं कम्मकंचुयं ।
मुणी विगयसंगामो, भवाओ परिमुच्चइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1814]
— *उत्तराध्ययन 9/20-21-22*

मुनि श्रद्धा को नगर, तप एवं संवर को अर्गला और क्षमा को त्रिगुप्ति से सुरक्षित एवं अपराजेय सुदृढ परकोटा बनाए । फिर पराक्रम को धनुष, ईर्यासमिति आदि को उसकी प्रत्यञ्चा अर्थात् डोर तथा धृति को उसकी मूठ बनाकर उसे सत्य से बाँधे । तपरूपी लोह बाणों से युक्त धनुष के द्वारा कर्मरूपी कवच को भेद डाले । इसप्रकार संग्राम का अन्त कर के अन्तर्युद्ध विजेता मुनि संसार से मुक्त हो जाता है ।

84. अन्तर्युद्ध

विगइ संगामो भवाओ परिमुच्चई ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1814]
— *उत्तराध्ययन 9/22*

विकारों के साथ किया जानेवाला संग्राम संसार से मुक्ति दिलाता है ।

85. आत्म-विजय

जो सहस्सं सहस्साणं संगामे दुज्जए जिणे ।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1815]
— *उत्तराध्ययन 9/34*

जो पुरुष दुर्जेय संग्राम में दस लाख योद्धाओं को जीतता है इसकी अपेक्षा वह एक अपने आपको जीत लेता है, यह उसकी परम विजय है ।

86. स्वयं को जीतो

सव्वमप्पे जिए जियं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1815]

— ***उत्तराध्ययन 9/36***

एक अपने आपको जीत लेने पर सबको जीत लिया जाता है ।

87. दुर्जेय आत्मा

दुज्जयं चेव अप्पाणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1815]

— ***उत्तराध्ययन 9/36***

आत्मा दुर्जेय है अर्थात् उसपर विजय पाना बड़ा कठिन है ।

88. बाह्य संग्राम

किं ते जुज्झेण बज्झओ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1815]

— ***उत्तराध्ययन 9/35***

बाहरी युद्ध से तुझे क्या प्रयोजन ?

89. आत्मजेता सुखी

अप्पाणमेव अप्पाणं जइत्ता सुहमेहए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1815]

— ***उत्तराध्ययन - 9/35***

आत्मा को आत्मा के द्वारा ही जीतकर मनुष्य सुख पाता है ।

90. आत्मयुद्ध

अप्पाणमेव जुज्झाहि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1815]

— ***उत्तराध्ययन 9/35***

आत्मा के साथ ही युद्ध करो ।

91. हजार गोदान से संयम श्रेष्ठ

जो सहस्सं सहस्साणं मासे मासे गवं दए ।
तस्सावि संजमो सेओ अदिंतस्सवि किंचणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1816]
— ***उत्तराध्ययन 9/40***

प्रतिमाह दस-दस लाख गायों का दान देनेवाले से कुछ भी नहीं देनेवाले संयमी का संयम श्रेष्ठ है ।

92. चरित्रवान् साधक अनुपम

मासे मासे तु जो बालो कुसग्गेण तु भुंजए ।
न सो सक्खाय धम्मस्स कलं अग्घइ सोलसिं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1816]
— ***उत्तराध्ययन 9/44***

जो बाल (अविवेकी) मास-मास की तपश्चर्या के अनन्तर कुश की नोक पर टिके उतना सा आहार करता है, फिर भी वह सुआख्यात धर्म (सम्यक्-चारित्र सम्पन्न मुनिधन) की सोलहवीं कला को भी नहीं पा सकता ।

93. तृष्णा: सुरसा का मुँह

सुवण्ण-रूप्पस्स उ पव्वया भवे,
सिया हु केलाससमा असंखया ।
नरस्स लुद्धस्स न तेहिं किंचि,
इच्छा हु आगाससमा अणंतिया ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1817]
— ***उत्तराध्ययन 9/48***

कदाचित् सोने और चाँदी के कैलाश के समान विशाल असंख्य पर्वत हो जाएँ तो भी लोभी मनुष्य की तृप्ति के लिए वे अपर्याप्त ही हैं; क्योंकि इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं ।

94. कबहु धापे नाय

पुढवी साली जवा चेव, हिरण्णं पसुभिस्सह ।
पडिपुण्णं नालमेगस्स, इह विज्जा तवं चरे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1817]
— ***उत्तराध्ययन 9/49***

चावल, जौ आदि धान्य, समस्त सुवर्ण तथा पशुओं से परिपूर्ण समग्र पृथ्वी भी लोभी मनुष्य को तृप्त कर सकने में असमर्थ है। यह जानकर तपश्चरण-इच्छा-निरोध करना चाहिए।

95. इच्छा, अनन्त

इच्छा हु आगाससमा अणंतिया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1817]
— ***उत्तराध्ययन 9/48***

इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं।

96. काम-कण्टक

सल्लं कामा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1818]
— ***उत्तराध्ययन 9/53***

काम-भोग शल्य है।

97. कषाय-परिणाम

अहे वयइ कोहेणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1818]
— ***उत्तराध्ययन 9/54***

आत्मा क्रोध से नीचे गिरती है।

98. काम-परिणाम

कामे पत्थेमाणा, अकामा जंति दुग्गइं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1818]

— *उत्तराध्ययन - 9/53*

काम-भोग की इच्छा करनेवाले उनका सेवन न करते हुए भी दुर्गति में चले जाते हैं।

99. काम, विषधर

कामा आसीविसोवमा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1818]

— *उत्तराध्ययन 9/53*

काम-भोग विषधर सर्प के समान है।

100. काम-जहर

विसं कामा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1818]

— *उत्तराध्ययन 9/53*

काम-भोग विषतुल्य है।

101. दम्भ-परिणाम

मायागइ पडिग्घाओ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1818]

— *उत्तराध्ययन 9/54*

दम्भ से सुगति का विनाश होता है।

102. लोभ-परिणाम

लोहाओ दुहओ भयं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1818]

— *उत्तराध्ययन 9/54*

लोभ से ऐहिक ओर पारलौकिक दोनों प्रकार का भय होता है।

103. अभिमान-परिणाम

माणेणं अहमागई ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1818]

— *उत्तराध्ययन - 9/54*

अभिमान से अधमगति होती है।

104. विचक्षण

विणियट्टन्ति भोगेसु ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1819]

— *उत्तराध्ययन 9/62*

विचक्षणजन भोगों से निवृत्त ही होते हैं।

105. द्रव्य-पर्याय

द्रव्यपर्यायवियुतं, पर्यायाद्रव्यवर्जिताः ।
क्व कदा केन किं रूपा दृष्टा मानेन केन वा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1860]

— *सन्मतितर्क 1/12*

एवं स्याद्‌वादमंजरी पृ. 19

पर्यायरहित द्रव्य और द्रव्यरहित पर्याय, किसने, किस समय, कहाँ पर, किस रूप में और कौन-से प्रमाण से देखे हैं? अर्थात् द्रव्य बिना पर्याय और पर्याय बिना द्रव्य कहीं भी संभव नहीं।

106. जैनदर्शन में समग्रदर्शन

उदधाविवसर्वसिंधवः समुदीर्णास्त्वयि नाथ दृष्टयः ।
न च तासु भवान् प्रदृश्यते, प्रविभक्तासु सरित्स्विवोदधिः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1885-1898]

— *द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशिका - 4/15*

हे नाथ! जिसप्रकार सभी नदियाँ समुद्र में जाकर सम्मिलित होती हैं, वैसे ही विश्व के सम्पूर्ण (दृष्टियाँ) दर्शन आपके शासन में समाविष्ट हो जाते हैं। जिसप्रकार भिन्न-भिन्न नदियों में समुद्र दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न दर्शनों में आप दिखाई नहीं देते। फिर भी जैसे नदियों का आश्रय समुद्र है, वैसे ही समस्त दर्शनों का आश्रयस्थल आपका शासन ही है।

107. जैनदर्शन में नय

नत्थि नएहिं विहुणं सुत्तं अत्थो य जिणमए किंचि ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1887-1899]

– *विशेषावश्यक सभाष्य 2277*

जैनदर्शन में एक भी सूत्र और अर्थ ऐसा नहीं है, जो नयशून्य हो ।

108. द्रव्य-लक्षण

दव्वं पज्जव विजुयं, दव्वविउत्ता य पज्ज वा णत्थि ।
उप्पायट्ठिइभंगा, हंदि दविय लक्खणं एयं ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1889]

– *सन्मति तर्क 1/12*

द्रव्य कभी पर्याय के बिना नहीं होता है और पर्याय कभी द्रव्य के बिना नहीं होती है । अतः द्रव्य का लक्षण उत्पाद, नाश और ध्रुव (स्थिति) रूप है ।

109. पदार्थ-प्रकृति

उप्पज्जंति वयंति अ, भावा निअमेण पज्जवणयस्स ।
दव्वट्ठियस्स सव्वं, ससया अणुप्पणम विणट्ठं ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1889]

– *सन्मतितर्क 1/11*

पर्याय दृष्टि से सभी पदार्थ नियम से उत्पन्न भी होते हैं, और नष्ट भी, परन्तु द्रव्यदृष्टि से सभी पदार्थ उत्पत्ति और विनाश से रहित सदाकाल ध्रुव हैं ।

110. नय

तम्हा सव्वेवि णया, मिच्छादिट्ठी सपक्खपडिबद्धा ।
अणोणणिस्सिआउण, हवंति सम्मत्त सब्भावा ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1891]

– *सन्मति तर्क 1/21*

अपने-अपने पक्ष में ही प्रतिबद्ध परस्पर निरपेक्ष सभी नय (मत) मिथ्या हैं; असम्यक् हैं, परन्तु ये ही नय जब परस्पर सापेक्ष होते हैं; तब सत्य एवं सम्यक् बन जाते हैं।

111. नयज्ञ प्रणत

नयास्तव स्यात् पदलांछना,
इमे रसोपविद्धा इव लोहधातवः ।
भवन्त्यभिप्रेतफला यतस्ततो
भवन्तमार्याः प्रणता हितैषिणः ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1898]

– *समन्तभद्र-स्वयंभू स्तोत्र, विमलनाथस्तव 65*

जिसतरह रसों के संयोग से लोहा अभीष्ट फल को देनेवाला बन जाता है; उसीतरह नयों में 'स्यात्' शब्द लगाने से भगवान् के द्वारा प्रतिपादित नय इष्ट फल को देते हैं। इसीलिए अपना हित चाहनेवाले लोग भगवान् के समक्ष प्रणत हैं।

112. अज्ञानी नर्कगामी

तिव्वाभितावे नराए पडंति ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1917]

– *सूत्रकृतांग 1/5/1/3*

अज्ञानी जीव अत्यधिक अन्धकार एवं तीव्र अभितापवाले नरक में पड़ते हैं।

113. रौद्र परिणामी

पावाइं कम्माइं करेंति रूद्दा ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1917]

– *सूत्रकृतांग 1/5/1/3*

रौद्र परिणामी जीव पापकर्म करते हैं।

114. नारकीय जीव दुःखी

दुक्खंति दुक्खी इह दुक्कडेण ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1920]

— ***सूत्रकृतांग 1/5/1/16***

नारकीय जीव यहाँ पर किए हुए दुष्कृत्यों के कारण ही दुःखी होकर वहाँ दुःख पाते हैं।

115. यथा कर्म तथा भार

जहाकडं कम्मे तहा सि भारे।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1921]

— ***सूत्रकृतांग 1/5/1/26***

जैसा कर्म किया है वैसा ही उसका भार समझो।

116. धन-महत्ता

जस्स धणं तस्स जण, जस्सत्थो तस्स बंधवा बहवे।
धणरहिओ उ मणूसो, होइ समो दासपेसेहिं॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1932]

— ***महानिशीथ 4/3***

जिसके पास धन है, उसके सगे सम्बन्धी बहुत होते हैं जिसके पास धन-सम्पत्ति है उसके बंधुजन भी बहुत होते हैं। संसार में धनविहीन मनुष्य दास, नोकर-चाकर के समान हो जाता है।

117. ज्ञान, अकेला

एगे नाणे।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1938]

— ***स्थानांग - 1/1/35***

उपयोग की अपेक्षा से ज्ञान एक प्रकार का है।

118. ज्ञान

अक्खरस्स अणंत भागो णिच्चुग्घाडिओ जति पुण सोवि।
आवरिज्जा तेण जीवो अजीवत्तं पावेज्जा॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1939]

— ***नंदीसूत्र - 77***

सभी संसारी जीवों का कम-से-कम अक्षरज्ञान का अनन्तवाँ भाग तो सदा उद्घाटित ही रहता है।

119. मति-श्रुत

जत्थ मइनाणं तत्थ सुयनाणं ।

जत्थ सुयनाणं तत्थ मतिनाणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1939]
एवं [भाग 7 पृ. 511]

— *बृहत्कल्पवृत्ति सभाष्य 1/1*

जहाँ मतिज्ञान है, वहाँ श्रुतज्ञान है और जहाँ श्रुतज्ञान है; वहाँ मतिज्ञान है।

120. द्विविधज्ञान

दुविहे नाणे पन्नते-तंजहा -

पच्चक्खे चेव, परोक्खे चेव ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1940]

— *स्थानांग - 2/2/1/60*

ज्ञान दो प्रकार का कहा है-प्रत्यक्ष और परोक्ष।

121. मिथ्यादृष्टि

नाणा फलाभावाओ, मिच्छद्दिट्ठिस्स अन्नाणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1945]

— *विशेषावश्यकभाष्य 115*

ज्ञान के फल (सदाचार) के अभाव में मिथ्यादृष्टि का ज्ञान अज्ञान है।

122. द्रव्यश्रुत

दव्वसुयं जे अणुवउत्तो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1949]

— *विशेषावश्यकभाष्य 129*

जो श्रुत उपयोगशून्य है, वह सब द्रव्यश्रुत है।

123. ज्ञान-प्रकार

विषयप्रतिभासाख्यं, तथात्मपरिणामवत् ।
तत्त्वंसंवेदनं चैव, त्रिधा ज्ञानं प्रकीर्तितम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1978]
एवं [भाग 7 पृ. 805]
— *सिद्धसेन द्वात्रिंशत् - द्वात्रिंशिका 26/2*

ज्ञान तीन प्रकार का है-विषय प्रतिभासज्ञान, आत्म परिणतिज्ञान और तत्त्व संवेदनज्ञान ।

124. ज्ञान-निमग्न

ज्ञानी निमज्जति ज्ञाने, मराल इव मानसे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1980]
— *ज्ञानसार - 5/1*

जैसे राजहंस मानसरोवर में निमग्न रहता है, वैसे ही ज्ञानी ज्ञान के अमृत में ही निमग्न रहता है ।

125. ज्ञान

पीयूषमसमुद्रोत्थं, रसायणमनौषधम् ।
अनन्याऽपेक्षमैश्वर्यं ज्ञानमाहुर्मनीषिणः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1980]
— *ज्ञानसार 5/8*

'ज्ञान' समुद्र के बिना प्रादुर्भूत अमृत है, बिना औषधि का रसायन है और किसी की अपेक्षा न रखनेवाला ऐश्वर्य है-ऐसा मनीषियोंने कहा है ।

126. ज्ञान-विनय पूरक

जो विणओ तं नाणं, जं नाण सो उ वुच्चई विणओ

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1980]
— *दशपयन्ना-चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक - 62*

जो विनय है, वही ज्ञान है और जो ज्ञान है, वही विनय कहा जाता है ।

127. अज्ञानी, सूअर

मज्जत्यज्ञः किलाज्ञाने, विष्ठायामिव शूकरः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1980]

— *ज्ञानसार - 5/1*

जैसे सूअर हमेशा विष्ठा में मग्न रहता है, वैसे ही अज्ञानी सदा अज्ञान में ही मस्त रहता है ।

128. ज्ञान और विनय

विणएण लहइ नाणं, नाणेण विजाणइ विणयं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1980]

— *दसपयन्ना-चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक - 62*

विनय से ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञान से विनय जाना जाता है ।

129. ग्रन्थिभिद् ज्ञान-दृष्टि

अस्ति चेद् ग्रन्थिभिद्ज्ञानं, किं चित्रैस्तन्त्रयन्त्रणैः ।
प्रदीपा क्वोपयुज्यन्ते, तमोऽघ्नी दृष्टिरेव चेत् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1980]

— *ज्ञानसार 5/6*

जिसने अन्तरङ्ग राग-द्वेष मोहग्रंथि का आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया हो, उसे विविध तन्त्र-मन्त्र और यन्त्र शास्त्रों की क्या आवश्यकता ? जब अन्धकार का भेदन करनेवाली दृष्टि ही तुम्हारे पास है तो कृत्रिम दीपमाला का क्या प्रयोजन है ?

130. वही श्रेष्ठ ज्ञान

निर्वाण पदमप्येकं, भाव्यते यन्मुहुर्मुहुः ।
तदेव ज्ञानमुत्कृष्टं निर्बन्धो नास्ति भूयसा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1980]

— *ज्ञानसार 5/2*

एक भी निर्वाण साधक पद, जो कि बार-बार आत्मा के साथ भावित किया जाता है, वही श्रेष्ठ ज्ञान है । अधिक ज्ञान की आवश्यकता नहीं है ।

131. निर्भय योगी का आनन्द

निर्भयः शक्रवद् योगी, नन्दत्यानन्दनन्दने ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1980]

– *ज्ञानसार 5/7*

इन्द्र की तरह निर्भय योगीराज आत्मानन्द रूप नन्दनवन में मौज करता है ।

132. कोल्हू का बैल

वादाँश्च प्रतिवादाँश्च, वदन्तो निश्चिताँश्तथा ।
तत्त्वान्तं नैव गच्छन्ति, तिलकपीलकवद्गतौ ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1980]

– *योगबिन्दु - 67 एवं ज्ञानसार 5/4*

जो निश्चित रूप से-नैयायिक या तार्किक शैली से पक्ष-विपक्ष में अपनी-अपनी दलीलें उपस्थित करते हुए वाद-प्रतिवाद-खण्डन-मण्डन में लगे रहते हैं; वे तत्त्व निर्णय तक नहीं पहुँच पाते हैं । उनकी स्थिति कोल्हू के बैल जैसी होती है; जो कोल्हू के चारों ओर चक्कर लगाता रहता है पर कभी किसी निश्चित छोर पर नहीं पहुँच पाता ।

133. ज्ञानालोक

इह भविए वि नाणे, परभविए विनाणे,
तदुभय भविए विणाणे ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1982]

– *भगवती - 1/1/10 [1]*

ज्ञान का प्रकाश इस जन्म में रहता है, दूसरे जन्म में रहता है और कभी दोनों जन्मों में भी रहता है ।

134. स्वकर्म-सिद्धि

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धि लभते नरः ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1985]

— *भगवद्गीता 18/45*

अपने-अपने उचित कर्म में लगे रहने से ही प्रत्येक मनुष्य को सिद्धि प्राप्त होती है।

135. कर्म से सिद्धि

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदती मानवः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1985]

— *भगवद्गीता 18/46*

अपने श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा उस परमात्मा की अर्चना करके ही प्राणी सिद्धि को पाता है।

136. आत्मा किससे लभ्य ?

सत्येन लभ्य तपसा ह्येष आत्मा ।
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1985]

— *मुण्डकोपनिषद् 3/1/5*

यह आत्मा नित्य सत्य से, तप से, सम्यग्ज्ञान से तथा ब्रह्मचर्य से ही प्राप्त की जा सकती है।

137. ज्ञान-क्रिया, दो पंख

उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणो गतिः ।
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्मशाश्वतम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1985]

— *योगवाशिष्ठ - वैराग्य प्रकरण 1/7*

जिसप्रकार पक्षी को आकाश में उड़ने के लिए दो परों की आवश्यकता होती है। दोनों पर बराबर होने से ही वह उड़ सकता है उसीप्रकार ज्ञान और कर्म दोनों के समन्वय से ही परमपद (शाश्वत ब्रह्म) प्राप्त किया जा सकता है।

138. ज्ञान की पराकाष्ठा

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ! ज्ञाने परिसमाप्यते ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1986]

— *भगवद्गीता* - 4/33

हे पार्थ ! सम्पूर्ण कर्म ज्ञान में शेष होते हैं अर्थात् ज्ञान उनकी पराकाष्ठ है।

139. कर्म से बन्धन, ज्ञान से मुक्ति

कर्मणा बध्यते जन्तु-विद्यया तु प्रमुच्यते ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1986]

— *महाभारत शांतिपर्व* - 240/7

जीव कर्म से बँधता है और ज्ञान से मुक्त होता है।

140. एकान्त क्या ?

नाणं किरियारहियं, किरियामित्तं च दो वि एगंता ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1988]

— *सन्मतितर्क* - 3/68

क्रियाशून्य ज्ञान और ज्ञानशून्य क्रिया-दोनों ही एकान्त हैं।

141. ज्ञान-क्रिया से भवपार

दोहिं ठाणेहिं संपन्ने अणगारे अणाइयं अणवदग्गं ।
दीहमद्धं वा चाउरंतसंसार कंतारं वीइवएज्जा ।
तं जहा-विज्जाए चेव, चरणेण चेव ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1988]

— *स्थानांग 1 ठाणा*

जीव दो स्थानों से संसार रूपी अटवी को पार करता है-विद्या (ज्ञान) और चारित्र से।

142. ज्ञान-क्रिया से सिद्धि

संजोग सिद्धीइ फलं वयंति,
न हु एगचक्केण रहो पयाइ ।
अंधो य पंगू य वणे समिच्चा,
ते संपउत्ता नगरं पविट्ठा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1988]
एवं [भाग 6 पृ. 443]

— ***आवश्यक निर्युक्ति 102 उपोद्घात***

संयोग-सिद्धि (ज्ञान-क्रिया का संयोग) ही फलदायी होती है। एक पहिए से कभी रथ नहीं चलता। जैसे अन्धा और पंगु मिलकर वन के दावानल से पार होकर नगर में सुरक्षित पहुँच गए, वैसे ही साधक भी ज्ञान और क्रिया के समन्वय से ही मुक्ति प्राप्त करते हैं।

143. ज्ञान अपर्याप्त

न नाण मित्तेण कज्ज निप्फत्ती।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1989]

— ***आवश्यक निर्युक्ति*** *- 3/1157*

मात्र ज्ञान प्राप्त कर लेने से ही कार्य की सिद्धि नहीं हो जाती।

144. आचरण महत्त्वपूर्ण

अणंतोऽवि य तरिउं, काइयं जोगं न जुंजइ नईए।
सो वुज्झइ सोएणं, एवं नाणी चरणहीणो॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1990]

— ***आवश्यक निर्युक्ति 3/1160***

तैरना जानते हुए भी यदि कोई जलप्रवाह में कूदकर कायचेष्टा न करे, हाथ-पाँव हिलाए नहीं, तो वह प्रवाह में डूब जाता है। धर्म को जानते हुए भी यदि कोई उसपर आचरण न करे तो वह संसार-सागर को कैसे तैर सकेगा ?

145. ज्ञान-सम्पन्न

नाणसंपन्नेणं जीवे चाउरंते
संसारे कंतारे ण विणस्सइ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1993]

— ***उत्तराध्ययन*** *- 29/60*

ज्ञान से सम्पन्न जीव चतुर्गति रूप संसार-अटवी में नहीं भटकता है।

146. ज्ञान-गुम्फित

जहा सूइ ससुत्ता, पडिया न विणस्सइ ।
तहा जीवे ससुत्ते, संसारे न विणस्सइ ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1993]

– ***उत्तराध्ययन 29/60/1***

जैसे धागे में पिरोइ गई सूई कूड़े-कचरे में गिर जाने पर भी गुम नहीं होती वैसे ही ज्ञानरूपी धागे से युक्त जीव संसार में नहीं भटकता और न ही विनाश को प्राप्त होता है ।

147. ज्ञान, प्रकाशक

नाण संपन्नयाएणं जीवे, सव्वभावाभिगमं जणयइ ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1993]

– ***उत्तराध्ययन - 29/61***

ज्ञान की सम्पन्नता से जीव सभी पदार्थ-स्वरूप को जान सकता है ।

148. सूत्र बनाम अर्थ प्रमाण

अत्थधरो तु पमाणं, तित्थगर मुहुग्गत्तो तु सो जम्हा ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1995]

– ***निशीथभाष्य 22***

सूत्रधर (शब्द-पाठी) की अपेक्षा अर्थधर (सूत्र रहस्य का ज्ञाता) को प्रमाण मानना चाहिए, क्योंकि अर्थ साक्षात् तीर्थंकरों की वाणी से निःसृत है ।

149. ज्ञानी-निन्दा निषेध

मा नाणीणमवणं, करेसु ता दीव तुल्लाणं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 1996]

– ***जीवानुशासनसटीक 16***

दीपतुल्य ज्ञानियों की निन्दा (अवर्णवाद) मत करो ।

150. ज्ञान पूजनीय

नाणाहियस्स नाणं पुइज्जइ ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 1996]

– *जीवानुशासनसटीक 16*

वस्तुत: ज्ञानियों का ज्ञान ही पुजा जाता है ।

151. शुभकर्मानुगामिनी सम्पत्ति

निपानमिव मण्डूकाः सरः पूर्णमिवाण्डजाः ।
शुभकर्माणमायान्ति, विवशाः सर्वसम्पदः ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2003]

– *हितोपदेश 1/176*
एवं धर्मसंग्रह 1

जैसे भरे जलाशय में मेंढक आते हैं और भरे सरोवर पर पक्षी आते हैं, वैसे ही जहाँ शुभकर्मो का संचय है; वहाँ सर्व सम्पत्तियाँ विवश होकर चली आती हैं ।

152. पश्चात्ताप से क्षपक श्रेणी

पच्छाणुतावेणं विरज्जमाणे करणगुण सेढिं पडिवज्जइ ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2018]

– *उत्तराध्ययन - 29/8*

कृतपाप के पश्चात्ताप से जीव वैराग्यवन्त होकर क्षपक श्रेणी प्राप्त करता है ।

153. आत्म-निंदा से पश्चात्ताप

निन्दणयाएणं पच्छाणुतावं जणयइ ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2018]

– *उत्तराध्ययन 29/7*

अपनी निंदा करने से जीव पश्चात्ताप अर्थात्-"मैंने यह पाप क्यों किया ?" ऐसा अपने प्रति खेद व्यक्त करता है ।

154. क्षण में भस्म

जं अन्नाणी कम्मं, खवेइ बहुयाहिं वासकोडीहिं ।
तं नाणी तिहिं गुत्तो, खवेइ ऊसासमित्तेणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2057]
एवं [भाग 7 पृ. 165]
— ***संबोधसत्तरि 100***
महाप्रत्याख्यान 101

अज्ञानी व्यक्ति जिन कर्मों को करोड़ों वर्षों में क्षय करता है, ज्ञानी व्यक्ति उन्हीं कर्मों को श्वासमात्र में (क्षणभर में) क्षय कर देता है ।

155. घर का जोगी जोगिना

अतिपरिचयादवज्ञा, भवति विशिष्टेऽपि वस्तुनि प्रायः ।
लोकः प्रयागवासी, कूपे स्नानं सदा चरति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2070]
— ***धर्मबिन्दु 1/48 [48]***

प्रायः विशिष्ट वस्तु से भी अतिपरिचय रखने से अवज्ञा या अवगणना होने लगती है । जैसे प्रयाग में रहनेवाले गंगा में नहीं नहाकर सदा कुएँ के जल से ही स्नान करते हैं ।

156. घर की मुर्गी साग बराबर

अतिपरिचयादवज्ञा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2070]
— ***धर्मबिन्दु सटीक 1/48 [48]***

अधिक परिचय करने से अनादर होता है ।

157. दर्शनावरणीय-प्रकार

सुह पडिबोहा निद्दा,... णिद्दा णिद्दाय दुक्ख पडिबोहा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2072]
— ***निशीथभाष्य - 133***

समय पर सहजतया जाग जाना 'निद्रा' है, कठिनाई से जागा जाए वह 'निद्रा-निद्रा' है ।

158. वचन-फलश्रुति

वयणं विन्नाण फलं, जइ तं भणिए वि नत्थि किं तेणं ?

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2074]

— *विशेषावश्यक - 1513*

वचन की फलश्रुति है अर्थज्ञान । जिस वचन के बोलने से अर्थ का ज्ञान नहीं हो तो उस वचन से क्या लाभ ?

159. सामायिक

सामाइओ वउत्तो, जीवो सामाइयं सयं चेव ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2076]

— *विशेषावश्यक भाष्य 1529*

सामायिक में उपयोग रखनेवाली आत्मा स्वयं ही सामायिक हो जाती है ।

160. निर्भयता

णिब्भयं जत्थ चोरभयं नत्थि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2080]

— *निशीथ चूर्णि - 1*

जहाँ निर्भयता है, वहाँ चोरभय नहीं होता ।

161. दृढ प्रतिज्ञ

लज्जागुणौघजननीं जननीमिव स्वा-,
मत्यन्तशुद्धहृदयामनुवर्तमानाम् ॥
तेजस्विनः सुखमसूनपि सन्त्यजन्ति,
सत्यव्रतव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2092]

— *भर्तृहरिकृत नीतिशतक 18 (परिशिष्ट)*

सत्यव्रत में रुचि रखनेवाले तेजस्वी पुरुष प्राणों को भी सुखपू
छोड़ देते हैं, किन्तु वे अत्यन्त शुद्ध हृदयवाली एवं अनुकूल आचरण करनेवा
अपनी माता के समान लज्जादि गुण समूह को उत्पन्न करनेवाली प्रति
को कभी नहीं छोड़ते ।

162. पञ्चामृत

नियमाः शौचसन्तोषौ स्वाध्यायतपसी अपि ।
देवताप्रणिधानं च, योगाऽऽचार्यैरुदाहृताः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2093]
— *द्वात्रिंशद्-द्वात्रिंशिका. 22/2*

योगाचार्यों ने पाँच नियम योग के लिए पञ्चामृत के रूपमें निर्दि
किए हैं-इनमें प्रथम अमृत पवित्रता, (मन-वचन-शरीरसे) दूसरा अमृ
सन्तोष, तीसरा अमृत स्वाध्याय, चौथा अमृत तपश्चर्या तथा पाँचवां अमृ
ईश्वर-प्रणिधान या देवस्तुति कहा है ।

163. पाषाणहृदय

जो उ परं कंपंत, दट्ठूण न कंपए कढिणभावो ।
एसो य निरणुकंपो, पणण्त्तो वीयरागेहिं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2108]
एवं [भाग 5 पृ. 1514]
एवं [भाग 7 पृ. 225]
— *बृहत्कल्पभाष्य 1320*

कठोर हृदयवाला व्यक्ति दूसरे को पीड़ा से काँपता हुआ देखकर भ
प्रकम्पित नहीं होता, वह अनुकंपारहित कहलाता है । चूँकि अनुकंपा क
अर्थ ही है-काँपते हुए को देखकर कंपित होना ।

164. मृत्युदर्शी से तिर्यञ्चदर्शी

जे मारदंसी से णिरयदंसी, जे णिरयदंसी से तिरियदंसी

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2109]
— *आचारांग - 1/3/4/130*

जो मारदर्शी (मृत्युदर्शक) होता है, वही नर्कदर्शी होता है और जो नर्कदर्शी होता है, वही तिर्यञ्चदर्शी होता है।

165. निरोध-हानि

मुत्तनिरोहे चक्खू वच्चनिरोहेण जीवियं चयइ ।

— *श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2116]*

— *ओघनिर्युक्ति 197*

अत्यधिक मूत्र के वेग को रोकने से नेत्र-ज्योति नष्ट हो जाती है और तीव्र मलवेग को रोकने से जीवन नष्ट हो जाता है।

166. अभ्यास-वैराग्य

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2116]

— *योगदर्शन 1/12*

अभ्यास (निरन्तर की साधना) और वैराग्य (विषयों के प्रति विरक्ति) के द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध होता है।

167. निरोध से नुकसान

उड्ढं निरोहे कोढं, सुक्कनिरोह भवइ अपुमं ।
[गेलन्नं वा भवे तिसुवि]

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2116]
एवं [भाग 7 पृ. 178]

— *ओघनिर्युक्ति 197*

ऊर्ध्ववायु को रोकने से कुष्ठरोग एवं वीर्य के वेग को रोकने से पुरुषत्व नष्ट होता है।

168. आत्मा की निर्लिप्तावस्था

लिप्यते पुद्गलस्कन्धो, न लिप्ये पुद्गलैरहम् ।
चित्रव्योमांजनेनेव ध्यायन्निति न लिप्यते ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2117]

— *ज्ञानसार 11/3*

जैसे विचित्र आकाश अंजन से लिप्त नहीं होता है वैसे ही अरू आत्मा भी कर्मलेप से यथार्थ में लिप्त नहीं होती। केवल पुद्गल ही पुद्ग से लिप्त होता है। इसप्रकार से ध्यान करनेवाले कर्ममल से लिप्त न होते।

169. निर्लिप्तता

लिप्तताज्ञानसम्पात-प्रतिघातायकेवलम् ।
निर्लेपज्ञानमग्नस्य, क्रिया सर्वोपयुज्यते ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2117]

— *ज्ञानसार - 11/4*

जो योगी निर्लेप ज्ञान में मग्न है, उसकी सभी सत्क्रिया उपयो होती है, लिप्तता ज्ञान के आगमन निवारण के लिए उपयोगी होती है।

170. ज्ञान-सिद्ध निर्लिप्त

संसारे निवसन् स्वार्थसज्जः कज्जलवेश्मनि ।
लिप्यते निखिलो लोके, ज्ञानसिद्धो न लिप्यते ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2117]

— *ज्ञानसार 11/1*

काजल के घर के समान संसार में रहा हुआ स्वार्थ तत्पर समस्तलो कर्म से लिप्त होता है अर्थात् कर्म से बँधता है, जबकि ज्ञान से परिपू कभी भी लिप्त नहीं होता।

171. निश्चय-व्यवहार दृष्टि

अलिप्तो निश्चयेनात्मा, लिप्तश्च व्यवहारतः ।
शुद्धयत्यलिप्तया ज्ञानी, क्रियावान् लिप्तया दृशा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2117]

— *ज्ञानसार 11/6*

निश्चयनय के अनुसार जीव कर्म बन्धनों से जकड़ा हुआ नहीं लेकिन व्यवहारनय के अनुसार वह जकड़ा हुआ है। ज्ञानीजन निर्लिप्त दृ से शुद्ध होते हैं और क्रियाशील लिप्तदृष्टि से अशुद्ध।

172. आत्मज्ञानी, अलिप्त

नाहं पुद्गलभावानां, कर्ता कारयिताऽपि न च ।
नानुमन्ताऽपि चेत्यात्मज्ञानवान् लिप्यते कथम् ? ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2117]
— *ज्ञानसार 11/2*

मैं पौद्गलिक-भावों का कर्ता, प्रेरक और अनुमोदक नहीं हूँ, ऐसे विचारवाला आत्मज्ञानी लिप्त कैसे हो सकता है ?

173. सत्कर्म, सुखद

इह लोगे सुचिन्ना कम्मा परलोगे,
सुहफलं विवागं संजुत्ता भवन्ति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2134]
— *स्थानांग 4/4/2/282*

इसलोक में किए हुए सत्कर्म परलोक में सुखप्रद होते हैं ।

174. सत्कर्म

इहलोगे सुचिन्ना कम्मा इहलोगे,
सुहफलं विवागं संजुत्ता भवंति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2134]
— *स्थानांग 4/4/2/282 [2]*

इस जीवन में किए हुए सत्कर्म इस जीवन में सुखदायी होते हैं ।

175. निर्वेद से वैराग्य

निव्वएणं दिव्वं माणुस तेरिच्छिएसु ।
कामभोगेसु निव्वेयं हव्वमागच्छइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2134]
— *उत्तराध्ययन 29/4*

निर्वेद भावना से देवता, मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी काम-भोगों से शीघ्र ही वैराग्य उत्पन्न हो जाता है ।

176. शंकाग्रस्त भय

संकाभीओ न गच्छेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2147]

— *उत्तराध्ययन 2/23*

जीवन में शंकाओं से भयभीत होकर मत चलो।

177. कर्तव्य

न य वित्तासए परं।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2147]

— *उत्तराध्ययन 2/22*

किसी भी जीव को कष्ट नहीं देना चाहिए।

178. मौनपूर्वक क्या करें ?

मूत्रोत्सर्गं मलोत्सर्गं, मैथुनं स्नानभोजनम्।
सन्ध्यादिकर्म पुजां च, कुर्याज्जापं च मौनवान्॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2162]

— *धर्मसंग्रह 2/126*

मल-मूत्र का विसर्जन, मैथुन, स्नान, भोजन, सन्ध्यादि कर्म (सायं-प्रात: कालीन नित्य धर्मकार्य) पुजा और जप-ये सारे कार्य मौनपूर्वक करना चाहिए।

179. परपीड़क

तमातो ते तमं जंति, मंदा आरंभ निस्सिया।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2172]

— *सूत्रकृतांग - 1/1/1/14*

पर-पीड़ा में लगे हुए अज्ञानी जीव अंधकार से अंधकार की ओर जा रहे हैं।

180. असत्य प्ररूपणा

जे ते उ वाइणो एवं, लोए तेसिं कुओ सिया ?

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2172]

— *सूत्रकृतांग - 1/1/1/14*

जो असत्य की प्ररूपणा करते हैं, वे संसार सागर को पार नहीं कर सकते ।

181. नास्तिक-धारणा

नत्थि पुण्णे व पावे वा णत्थि लोए इतो परे ।
सरीरस्स विणासेणं, विणासो होति देहिणो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2172]
— *सूत्रकृतांग - 1/1/1/12*

न पुण्य है, न पाप है और न इस दृश्यमान् लोक के अतिरिक्त कोई संसार है । शरीर का नाश होते ही जीव का नाश हो जाता है ।

182. अन्यत्व

अन्नो जीवो, अन्नं सरीरं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2173]
— *सूत्रकृतांग 2/1/13*

आत्मा और है शरीर और है ।

183. अपेक्षा दृष्टि से नारी

बाह्यदृष्टेः सुधासार घटिता भाति सुन्दरी ।
तत्त्वदृष्टेस्तु साक्षात् सा विण्मूत्रपिठरोदरी ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2182]
— *ज्ञानसार 19/4*

बाह्यदृष्टियुक्त व्यक्ति को नारी अमृत के सार से बनी लगती है, जबकि तत्त्वदृष्टि को वह स्त्री मल-मूत्र की हंडिया जैसी उदरवाली प्रतीत होती है ।

184. बाह्यान्तर दृष्टि में: देह

लावण्यलहरीपुण्यं वपुः पश्यति बाह्यदृक् ।
तत्त्वदृष्टिः श्वकाकानां भक्ष्यं कृमीकुलाकुलम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2182]

— *ज्ञानसार 19/5*

बाह्यदृष्टि मनुष्य सौन्दर्य-तरंग के माध्यम से शरीर को पवित्र देखता है, जबकि तत्त्वदृष्टि मनुष्य उसी शरीर को कौओं और कुत्तों के खाने योग्य अनेक कृमियों से भरा हुआ खाद्य देखता है।

185. तत्त्वद्रष्टा सदा सजग

भ्रमवाटी बहिर्दृष्टि भ्रमच्छाया तदीक्षणम् ।
अभ्रान्तस्तत्त्वदृष्टिस्तु नास्यां शेते सुखाशया ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2182]

— *ज्ञानसार - 19/2*

बाह्यदृष्टि भ्रान्ति की वाटिका है और बाह्यदृष्टि का प्रकाश भ्रान्ति की छाया है, लेकिन भ्रान्तिविहीन तत्त्वदृष्टिवाला जीव भूलकर भी भ्रम की छाया में नहीं सोता।

186. विश्वोपकारक

न विकाराय विश्वस्योपकारायैव निर्मिताः ।
स्फुरत्कारुण्यपीयूष-वृष्टयस्तत्त्वदृष्टयः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2182]

— *ज्ञानसार - 19/8*

करुणा की अमृतवृष्टि करनेवाले तत्त्वदृष्टि पुरुषों का विकार के लिए नहीं, अपितु विश्वोपकार के लिए निर्माण हुआ है।

187. जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि

ग्रामाऽऽरामादि मोहाय, यद्दृष्टं बाह्ययादृशा ।
तत्त्वदृष्ट्या तदेवान्तर्नीतं वैराग्यसम्पदे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2182]

— *ज्ञानसार 19/3*

गाँव-उपवन आदि को बाह्य दृष्टि से देखना मोह को बढ़ाना है और तत्त्वदृष्टि से उसी वस्तु को देखने से वैराग्यगुण की वृद्धि होती है।

188. बाह्यान्तर दृष्टि की समझ

भस्मना केशलोचेन, वपुधृतमलेन वा ।
महान्तं बाह्यदृग् वेत्ति, चित्साम्राज्येन तत्त्ववित् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2182]
— *ज्ञानसार - 19/7*

बाह्यदृष्टि मनुष्य शरीर पर राख मलनेवाले को अथवा शरीर पर मलधारण करनेवाले को महात्मा समझता है, जबकि तत्त्वदृष्टि मनुष्य ज्ञान की गरिमा वाले को महान् मानता है ।

189. मोहदृष्टि व तत्त्वदृष्टि

रूपे रूपवती दृष्टि र्दृष्ट्वा रूपं विमुह्यति ।
मज्जत्यात्मनि नीरूपे, तत्त्वदृष्टिस्त्वरूपिणी ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2182]
— *ज्ञानसार - 19/1*

बाह्य रूपवाली मोह-दृष्टि जड़वस्तु में रूप देखकर मोहित होती है, जबकि रूपरहित तत्त्वदृष्टि रूपातीत आत्मा के स्वरूप (सुख) में ही लीन हो जाती है ।

190. तात्त्विक सर्वोत्कृष्ट

तात्त्विकस्य समं पात्रं न भूतो न भविष्यति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2183]
— *धर्मसंग्रह - 2*

तत्त्वविद् के समान पात्र न तो अतीत में हुआ और न होगा ।

191. तात्त्विक श्रेष्ठ

महाव्रती सहस्त्रेषु वरमेको तात्त्विकः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2183]
— *धर्मसंग्रह 2, पृ. 205*

हजारों महाव्रतियों में एक तात्त्विक श्रेष्ठ है ।

192. जीव अनास्त्रव

राईभोयण विरओ, जीवो भवइ अणासवो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2199]

— ***उत्तराध्ययन* - 30/2**

रात्रि-भोजन के त्याग से जीव अनास्त्रव होता है ।

193. तप-परिभाषा

तापयति अष्टप्रकारं कर्म इति तपः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2199]

— ***आवश्यक मलयगिरि खण्ड* 2/1**

जो आठ प्रकार के कर्मों को तपाता है, उसे 'तप' कहते हैं ।

194. दुःसह्य नहीं

धनार्थिनां यथा नास्ति, शीततापादिदुस्सहम् ।
तथा भव-विरक्तानां, तत्त्वज्ञानार्थिनामपि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2202]

— ***ज्ञानसार* 31/3**

जैसे धनार्थी के लिए सर्दी और गर्मी दुसह्य नहीं है वैसे ही संसार से विरक्त तत्त्वज्ञानार्थी के लिए शीततापादि कुछ भी दुसह्य नहीं है ।

195. तप ही ज्ञान

ज्ञानमेव बुधा प्राहुः, कर्मणां तापनात्तपः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2202]

— ***ज्ञानसार* - 31/1**

पंडितों का कहना हैं कि कर्मों को तपानेवाला होने से तप, ज्ञान ही है ।

196. शुद्ध तप की कसौटी

यत्र ब्रह्म जिनार्चा च, कषायाणां तथा हतिः ।
सानुबन्धा जिनाज्ञा च, तत्तप शुद्धमिष्यते ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2202]

— *ज्ञानसार - 31/6*

जहाँ ब्रह्मचर्य हो, जिनपूजा हो, कषायों का क्षय होता हो और अनुबन्ध सहित जिनाज्ञा प्रवर्तित हो, ऐसा तप शुद्ध माना जाता है ।

197. बाह्याभ्यन्तर तपस्वी मुनि

मूलोत्तरगुणश्रेणि-प्राज्यसाम्राज्य सिद्धये ।
बाह्यमाभ्यन्तरं चेत्थं तपः कुर्यान्महामुनिः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2202]

— *ज्ञानसार - 31/8*

मूलगुण और उत्तरगुण की श्रेणिस्वरूप विशाल साम्राज्य की सिद्धि के लिए महामुनीश्वर (श्रेष्ठमुनि) बाह्य और अन्तरंग तप करते हैं ।

198. तप कैसा हो ?

तदेव हि तपः कार्यं दुर्ध्यानं यत्र नो भवेत् ।
येन योगा न हीयन्ते, क्षीयन्ते नेन्द्रियाणि वा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2202]

— *ज्ञानसार - 31/7*

वैसा ही तप करना चाहिए जिससे कि मन में दुर्ध्यान न हो, योगों की हानि न हो और इन्द्रियाँ क्षीण न हो ।

199. उलटी चाल संतजनों की

आनुस्त्रोतसिकी वृत्ति-र्बालानां सुखशीलता ।
प्रातिस्त्रोतसिकी वृत्ति र्ज्ञानिनां परमं तपः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2202]

— *ज्ञानसार 31/2*

लोकप्रवाह का अनुसरण करने की वृत्ति, अज्ञानियों की सुखशीलता है, जबकि ज्ञानी पुरुषों की लोक-प्रवाह के विरुद्ध चलने की वृत्ति परम तप है ।

200. तप वही !

सो हु तवो कायव्वो जेण मणोऽमंगलं न चिंतेइ ।
जेण न इंदियहाणी, जेण य जोगा न हायंति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2204]
— ***महानिशीथ चूर्णि*** *14*

वही तप करना चाहिए जिससे कि मन अमंगल न सोचे, इन्द्रियों की हानि न हो और नित्यप्रति की योग-धर्म क्रियाओं में विघ्न न आएँ ।

201. निष्काम तप

नो पूयणं तवसा आवहेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2204]
— ***सूत्रकृतांग*** *- 1/7/27*

तप के द्वारा पूजा-प्रतिष्ठा की अभिलाषा नहीं करनी चाहिए ।

202. वाणी-तप

अनुद्वेगकरं वाक्यं, सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं, चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2205]
— ***भगवद्गीता*** *17/15*

उद्वेग न करनेवाला, प्रिय, हितकारी यथार्थ सत्य-भाषण और स्वाध्याय का अभ्यास-ये सब वाणी के तप कहे जाते हैं ।

203. राजस तप

सत्कार मानपुजाऽर्थं, तपो दम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं, राजसं चलमध्रुवम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2205]
— ***भगवद्गीता*** *17/18*

जो तप सत्कार, मान और पुजा के लिए तथा अन्य किसी स्वार्थ के लिए पाखण्ड भाव से किया जाता है, वह अनिश्चित तथा अस्थिर तप होता है, उसे 'राजस' तप कहते हैं ।

204. मानस तप

मनः प्रसादः सौम्यत्वं, मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धि रित्येतद्, मानसं तप उच्यते ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2205]
— ***भगवद्गीता*** *17/16*

मन की प्रसन्नता, सौम्यभाव, मौन, आत्म-निग्रह तथा शुद्ध भावना - ये सब 'मानस' तप कहे जाते हैं ।

205. मानस-तप श्रेष्ठ

शारीराद्वाङ्मयं सारं, वाङ्मयान्मानसं शुभम् ।
जघन्यमध्यमोत्कृष्ट-निर्जरा करणं तपः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2205]
— ***गच्छाचारपयन्नासटीक*** *2 अधि.*

शारीरिक से वाचिक और वाचिक से मानसिक तप श्रेष्ठ माना गया है और यह तप जघन्य, मध्यम तथा उत्कृष्ट रूप से निर्जरा का कारण है ।

206. तप से निर्जरा

तवेणं वोयाणं जणयइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2205]
— ***उत्तराध्ययन*** *- 29/28*

तप से व्यवदान अर्थात् कर्मों की निर्जरा होती है ।

207. शारीरिक तप

देवद्विजगुरुप्राज्ञ, पूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2205]
— ***भगवद्गीता*** *17/14*

देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनों का पूजन एवं पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा, यह 'शारीरिक' तप कहा जाता है ।

208. तामस तप

मूढग्रहेण यच्चाऽऽत्म, पीडया क्रियते तपः ।
परस्योच्छेदनार्थं वा, तत्तामसमुदाहृतम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2205]
— *भगवद्गीता 17/16*

जो तप मूढ़तापूर्वक हठ से तथा मन, वचन और शरीर की पीड़ा के सहित अथवा दूसरे का अनिष्ट करने के लिए किया जाता है, वह 'तामस' तप कहा जाता है ।

209. सात्त्विक तप

तपश्च त्रिविधं ज्ञेयं मफलाऽऽकांक्षिभिर्नरैः ।
श्रद्धया परया तप्तं, सात्त्विकं तप उच्यते ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2205]
— *गीता 17/17*

तप तीन प्रकार का जानना चाहिए । जो तप फलाकांक्षारहित व श्रद्धापूर्वक किया जाता है उसे 'सात्त्विक तप' कहते है ।

210. कर्म-निर्जराकाङ्क्षी

भवइ निरासए निज्जरट्ठिए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2206]
— *दशवैकालिक - 9/4/10*

कर्मों की निर्जरा चाहनेवाला साधक ऐहिक-पारलौकिक सुखों की कामना नहीं करता ।

211. तपरत मुनि

विविहगुण तवो रए य निच्चं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2206]
— *दशवैकालिक 9/3/10*

तप समाधिवन्त मुनि सदा विविधगुणवाले तप में रत रहता है ।

212. तपश्चरण

नऽन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तव महिट्ठेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2206]

— *दशवैकालिक 9/5/515*

केवल कर्म-निर्जरा के लिए तपस्या करनी चाहिए । इस लोक-परलोक व यश: कीर्ति के लिए नहीं ।

213. तप-प्रयोजन

नो इह लोगट्ठयाए तवमहिट्ठेज्जा,
नो परलोगट्ठयाए तवमहिट्ठेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2206]

— *दशवैकालिक 9/5/515*

इहलोक के प्रयोजन से तप नहीं करना चाहिए और परलोक के लिए भी तप नहीं करना चाहिए ।

214. निष्काम तपाचरण

नो कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए तवमहिट्ठेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2206]

— *दशवैकालिक - 9/4/515*

तपोनुष्ठान कीर्ति, वर्ण (यश) शब्द और श्लाघा के लिए नहीं होना चाहिए ।

215. तप:शूर

तवसूरा अणगारा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2207]
एवं [भाग 7 पृ. 1030]

— *स्थानांग 4/4/3/317*

अणगार तप:शूर होते हैं ।

216. तप से कर्म नष्ट

तवसा धुणइ पुराण पावगं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2207]
एवं [भाग 5 पृ. 1566]

— ***दशवैकालिक 9/4/10 एवं 10/7***

तपश्चर्या से पूर्वकृत पापकर्म नष्ट होते हैं।

217. परमसुखाभिलाषी

सव्वे पाणापरमाहम्मिया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2213]

— ***दशवैकालिक 4/40***

सभी प्राणी परम सुख के अभिलाषी हैं।

218. बाल-बुद्धि

वित्तं पसवो य तं बाले सरणं ति मण्णती ।
एते मम ते सुवी अहं, नो ताणं सरणं न विज्जइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2220]

— ***सूत्रकृतांग - 1/2/3/16***

मूर्खजन ऐसा मानता है कि यह धन-पशु और ज्ञातिजन मेरे शरणभूत और रक्षक हैं और मैं भी उनका हूँ, किन्तु वास्तव में ये सब उसके लिए न तो त्राणभूत होते हैं और न ही शरणभूत।

219. योग-नियम

शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2226]

— ***पातंजल योगदर्शन 2/32***

शौच (देहशुद्धि एवं चित्तशुद्धि) संतोष, तप, स्वाध्याय तथा परमात्म-चिन्तन-ये पाँच नियम हैं।

220. सन्तोष, परमसुख

संतोषादनुत्तमं सुख-लाभः ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2226]

– ***पातंजल योगदर्शन** 2/43*

सन्तोष से सर्वोत्तम सुख का लाभ होता है ।

221. साधक-चिन्तन

दुःखरूपो भवः सर्व, उच्छेदोऽस्य कुतः कथम् ?
चित्रा सतां प्रवृत्तिश्च, साशेषा ज्ञायते कथम् ? ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2227]

– ***योगदृष्टि समुच्चय** 47*

यह सारा संसार दुःख रूप है । इसका उच्छेद किसप्रकार हो ? सत्पुरुषों की विविधप्रकार की आश्चर्यकारी सत्प्रवृत्तियों का ज्ञान कैसे हो ? साधक ऐसा सात्त्विक चिन्तन लिए रहता है ।

222. परमतृप्त मुनि

पीत्वा ज्ञानामृतं भुक्त्वा, क्रिया सुरलता फलम् ।
साम्य ताम्बुलमास्वाद्य, तृप्तिं यान्ति परां मुनिः ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2241]

– ***ज्ञानसार** 10/1*

ज्ञानामृत का पानकर क्रिया रूपी कल्पवृक्ष के फल खाकर और समता रूपी ताम्बूल का आस्वादन कर मुनि परमतृप्ति का अनुभव करता है।

223. अतीन्द्रिय तृप्ति

या शान्तैकरसास्वादाद् भवेत् तृप्तिरतीन्द्रिया ।
सा न जिह्वेन्द्रियद्वारा, षड्रसास्वादनादपि ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2241]

– ***ज्ञानसार** 10/3*

शान्त-वैराग्य रस का आस्वादन करने से जो अतीन्द्रिय तृप्ति होती है, वह रसनेन्द्रिय के माध्यम से षट्-रस भोजन का स्वाद लेने से भी नहीं हो सकती ।

224. सम्यग्दृष्टि को वास्तविक तृप्ति

संसारे स्वप्नमिथ्या तृप्तिः स्यादाभिमानिकी ।
तथ्या तु भ्रान्तिशून्यस्य साऽऽत्मवीर्यविपाककृत् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2242]
— *ज्ञानसार 10/4*

जैसे स्वप्न में मोदक खाने या देखने से वास्तविक तृप्ति नहीं होती, वैसे ही संसार में विषयों (अभिमान) से मान ली जानेवाली झूठी तृप्ति होती है। वास्तविक तृप्ति तो मिथ्याज्ञान रहित सम्यग्दृष्टि को होती है और वह आत्मवीर्य की पुष्टि-वृद्धि करनेवाली होती है।

225. द्रव्यतीर्थ

दाहोवसमं तण्हाइ, छेयणं मलप्पवाहणं चेव ।
तिहिं अत्थेहिं निउत्तं, तम्हा तं दव्वओ तित्थं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2242]
— *संबोधसत्तरि 114*

दाह को शान्त करना, तृष्णा का छेदन करना और कर्म-मल को दूर करना-इन तीनों अर्थों से युक्त होने से उसे 'द्रव्यतीर्थ' कहते हैं।

226. धर्म ही तीर्थ

कोहंमि उ निग्गहिए, दाहस्स उवसमणं हवइ तित्थं ।
लोहंमि उ निग्गहिए, तण्हाए छेयणं होई ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2242]
— *संबोधसत्तरि - 115*

क्रोध का निग्रह करने से मानसिक जलन शान्त होती है, लोभ का निग्रह करने से तृष्णा शान्त हो जाती है, इसलिए धर्म ही सच्चा तीर्थ है।

227. भावतीर्थ

अट्ठविहं कम्मरयं, बहुएहिं भवेहिं संचियं जम्हा ।
तवसंजमेण धोवइ, तम्हा तं भावओ तित्थं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2242]

— *संबोधसत्तरि 116*

अनेक भवों के सञ्चित किए हुए अष्टविध कर्म-रज तप और संयम के द्वारा दूर होते हैं, इसलिए उसे 'भावतीर्थ' कहते हैं।

228. सुखी कौन ?

सुखिनो विषयैस्तृप्ता, नेन्द्रोपेन्द्रादयोऽप्यहो ।
भिक्षुरेकः सुखी लोके, ज्ञानतृप्तो निरंजन ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2242]

— *ज्ञानसार 10/8*

यह आश्चर्य है कि विषय-सुखों से अतृप्त, देवराज इन्द्र और उपेन्द्र भी सुखी नहीं है, किन्तु जगत् में ज्ञान से तृप्त निरंजन एक मुनि ही सुखी है।

229. शुभाशुभ डकार

विषयोर्मिविषोद्गारः स्यादतृप्तस्य पुद्गलैः ।
ज्ञानतृप्तस्य तु ध्यानसुधोद्गारपरम्परा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2242]

— *ज्ञानसार 10/7*

जो पुद्गलों से तृप्त नहीं हैं, उन्हें विषय-तरंगरूपी जहर की डकारें आती हैं, उसीतरह जो ज्ञान से तृप्त हैं, उन्हें ध्यानरूपी अमृत की डकारों की परम्परा चलती रहती हैं।

230. विरागी-निर्बन्ध

अकुव्वतो णवं णत्थि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2246]

— *सूत्रकृतांग - 1/15/7*

जो अन्दर में राग-द्वेष रूप-भावकर्म नहीं करता, उसे नए कर्म का बँध नहीं होता।

238. कौन हिंसक ?

जे पमत्ते गुणट्ठिए से हु दंडेत्ति पवुच्चइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2346]

— ***आचारांग 1/1/4/33***

जो प्रमत्त है, विषयासक्त है; वह निश्चय ही जीवों को पीड़ा पहुँचानेवाला होता है ।

239. साधक आत्मनिरीक्षक

तं परिण्णाय मेहावी, इदाणिं णो जमहं
पुव्वमकासी पमादेणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2346]

— ***आचारांग 1/1/4/33***

मेधावी साधक को आत्म-परिज्ञान के द्वारा यह निश्चय करना चाहिए कि "मैंने पिछले जीवन में प्रमादवश जो कुछ भूलें की हैं, वे अब कभी नहीं करूँगा ।

240. स्तुति-फल

थय-थुइमंगलेणं नाणदंसण-चरित्त
बोहिलाभं जणयइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2385]

— ***उत्तराध्ययन 29/16***

प्रभु-प्रार्थना-स्तुति रूप मंगल से ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप बोधि की प्राप्ति होती है ।

241. विनय धर्म

विणयमूले धम्मे पण्णत्ते ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2401]

— ***ज्ञाताधर्मकथा 1/5***

जिसके मूल में विनय है, वही धर्म है ।

242. वैर से वैर

रूहिरकयस्स वत्थस्स रूहिरेण चेव ।
पक्खालिज्जमाणस्स नत्थि सोही ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2401]
— *ज्ञाताधर्मकथा 1/5*

रक्त से सना वस्त्र रक्त से धोने से शुद्ध नहीं होता ।

243. अविनाशी आत्मा

अव्वए वि अहं, उवट्ठिए वि अहं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2403]
— *ज्ञाताधर्मकथा 1/5*

मैं (आत्मा) अव्यय-अविनाशी हूँ, अवस्थित - एकरस हूँ ।

244. अस्थिरचित्त क्रिया, अकल्याणकारी

अस्थिरे हृदये चित्रा, वाङ् नेत्राऽकारगोपना ।
पुंश्चल्या इव कल्याणकारिणी न प्रकीर्तिता ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2410]
— *ज्ञानसार 3/3*

चित्त की अस्थिरता को छोड़े बिना, व्यभिचारिणी स्त्री की तरह वाणी की भिन्नता, दृष्टि की भिन्नता, आकृति की भिन्नता, जैसी विविध क्रियाएँ कल्याणकारी नहीं हो सकती ।

245. ज्ञान-दुग्ध

• **ज्ञानदुग्धं विनश्येत, लोभ विक्षोभकुर्चकैः ।**
अम्लद्रव्यादिवास्थैर्यादिति मत्वा स्थिरो भव ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2410]
— *ज्ञानसार 3/2*

ज्ञानरूपी दूध अस्थिरतारूपी खट्टे पदार्थ से (लोभ के विकारों से) बिगड़ जाता है. ऐसा मानकर स्थिर बनो ।

246. चारित्र

चारित्रं स्थिरतारूपमतः ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2410]

– *ज्ञानसार - 3/8*

योग की स्थिरता ही चारित्र है।

247. क्रियौषधि का क्या दोष ?

अन्तर्गतं महाशल्य-मस्थैर्यं यदि नोद्धृतम् ।
क्रियौषधस्य को दोष-स्तदा गुणमयच्छतः ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2410]

– *ज्ञानसार - 3/4*

यदि मन में रही महाशल्य रूपी अस्थिरता दूर नहीं की है, (उसे जड़मूल से उखाड़ नहीं फैंका है) तो फिर गुण करनेवाली क्रियारूप औषधि का क्या दोष ?

248. चञ्चल, खिन्न

वत्स ! किं चंचलस्वान्तो भ्रान्त्वा - भ्रान्त्वा विषीदसि ?

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2410]

– *ज्ञानसार - 3/1*

हे वत्स ! तू चंचल प्रवृत्ति का बनकर भटक-भटककर क्यों विषाद करता है ?

249. देव प्रणम्य कौन ?

थोवाहारो थोवभणिओ, अ जो होइ थोवनिद्दो अ।
थोवोवहि उवकरणो, तस्स हु देवा वि पणमंति ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2419]

– *आवश्यक निर्युक्ति 4/1282*

जो साधक थोड़ा खाता है, थोड़ा बोलता है, थोड़ी नींद लेता है और थोड़ी ही धर्मोपकरण की सामग्री रखता है; उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

250. तत्त्व-जागृति

जह जह सुज्झइ सलिलं, तह तह रूवाइ पासइ दिट्ठी ।
इय जह जह तत्तरुई, तह तह तत्तागमो होइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2429]
— *आवश्यकनिर्युक्ति 3/1169*

जल ज्यों-ज्यों स्वच्छ होता है, त्यों-त्यों द्रष्टा उसमें प्रतिबिम्बित रूपों को स्पष्टतया देखने लगता है, इसीप्रकार अन्तर में ज्यों-ज्यों तत्त्वरुचि जागृत होती है, त्यों-त्यों आत्मा तत्त्वज्ञान प्राप्त करती है ।

251. मोक्ष-मार्ग

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2429]
— *तत्त्वार्थसूत्र 1/1*

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मोक्षमार्ग हैं ।

252. दर्शनभ्रष्ट की मुक्ति नहीं ।

सिज्झंति चरणरहिया, दंसणरहिया न सिज्झंति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2430]
— *भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक 66*

चारित्रविहीन (आचरणहीन) व्यक्ति की मुक्ति हो सकती है, किन्तु सम्यग्दर्शन-विहीन की मुक्ति नहीं होती ।

253. सुख-निद्रा

सुहिओ हु जणो ण बुज्झइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2432]
— *उत्तराध्ययन निर्युक्ति 135*

सुखी मनुष्य प्रायः जल्दी नहीं जग पाता ।

254. दुर्जन-प्रकृति

राई सरिसव मित्ताणि, पर छिद्दाणि पाससि ।
अप्पणो बिल्लमेत्ताणि, पासंतो वि न पाससि ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2433]

— *उत्तराध्ययननिर्युक्ति 140*

दुर्जन दूसरों के राई और सरसव जितने दोष भी देखता रहता है, किन्तु अपने बिल जितने बड़े दोषों को देखता हुआ भी अनदेखा कर देता है।

255. सम्यग्दर्शन से लाभ

दंसणसम्पन्नयाएणं जीवे भवमिच्छत्तछेयणं करेइ ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2435]

— *उत्तराध्ययन - 29/62*

सम्यग्दर्शन की सम्पन्नता से आत्मा संसार के हेतुभूत मिथ्यात्व का उन्मूलन कर देती है।

256. दर्शन-अष्टाचार

निस्संकिय निक्कंखिय-निव्वित्तिगिच्छा अमूढ दिट्ठीय ।
उववूह थिरीकरणे, वच्छल्लपभावणे अट्ठ ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2436]

— *उत्तराध्ययन - 28/31*

(१) सर्वज्ञ भगवान् की वाणी में सन्देह नहीं करना (२) असत्यमतों का चमत्कार देखकर उनकी अभिलाषा नहीं करना (३) धर्म-फल की प्राप्ति के विषय में शंका नहीं करना (४) अनेक मतमतान्तरों के विचार सुनकर दिग्मूढ़ न बनना अर्थात् अपनी सच्ची श्रद्धा से न डिगना (५) गुणीजनों के गुणों की प्रशंसा करना और गुणी बनने का प्रयत्न करना (६) धर्म से विचलित होते हुए प्राणी को समझाकर पुनः धर्म में स्थिर करना। (७) वीतराग भाषित धर्म का हित करना, स्वधर्मी बन्धुओं के साथ धार्मिक प्रेम रखना और उन्हें धार्मिक सहायता देना। (८) तथा सद्धर्म की प्रभावना करना - ये आठ सम्यग्दृष्टि जीवों के आचरण करने योग्य कार्य हैं अर्थात् सम्यक्त्व के ये आठ आचार हैं।

257. दया

यत्नादपि परक्लेशं, हर्तुं या हृदि जायते ।
इच्छाभूमिः सुरश्रेष्ठ ! सा दया परिकीर्तिता ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2456]
– ***हारिभद्रीयाष्टक*** *24*

मनुष्य के हृदय में यत्न करके भी दूसरों के कष्ट को दूर करने की जो इच्छा उत्पन्न होती है, वह 'दया' कहलाती है।

258. जहाँ दया नहीं !

न तद्दानं न तद्ध्यानं, न तज्ज्ञानं न तत्तपः ।
न सा दीक्षा न सा भिक्षा, दया यत्र न विद्यते ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2457]
एवं [भाग 5 पृ. 151]
– ***धर्मरत्नप्रकरण*** *– 14-15*

वह दान दान नहीं: वह ध्यान ध्यान नहीं. वह ज्ञान ज्ञान नहीं, वह तप तप नहीं. वह दीक्षा दीक्षा नहीं, और वह भिक्षा भिक्षा नहीं है; जिसमें दया नहीं है।

259. धर्म का मूल

मूलं धम्मस्स दया ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2457]
– ***धर्मरत्नप्रकरण*** *17/14*

धर्म का मूल दया है।

260. द्रव्य-लक्षण

गुणाणमासओ दव्वं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2463]
– ***उत्तराध्ययन*** *28/6*

गुण जिसके आश्रित होकर रहे, जो गुणों का आधार हो, उसे 'द्रव्य' कहते हैं।

261. पर्याय-लक्षण

लक्खणपज्जवाणं तु उभओ अस्सिया भवे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2463]

— *उत्तराध्ययन 28/6*

जो द्रव्य और गुण दोनों के आश्रित रहता हो, उसे 'पर्याय' कहते हैं ।

262. गुण-लक्षण

एग दव्वस्सिया गुणा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2463]

— *उत्तराध्ययन 28/6*

जो केवल एक द्रव्य के आश्रित रहते हैं, वे 'गुण' कहलाते हैं ।

263. लोक-स्वरूप

धम्मो अहम्मो आकासं कालो पोग्गल जंतवो ।
एस लोगो त्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2463]

— *उत्तराध्ययन - 28/7*

केवलदर्शी जिनेन्द्रों ने इस लोक को, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव-इन षट्द्रव्यात्मक स्वरूप में प्रतिपादित किया है ।

264. तप, अमोघ

तपसा सर्वाणि सिद्ध्यन्ति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2489]

— *सूत्रकृतांग सटीक 1/12*

तपश्चर्या से सभी कार्य सिद्ध होते हैं ।

265. चतुर्धा-धर्म

दानेन महाभोगो, देहिनां सुरगतिश्च शीलेन ।
भावनया च विमुक्तिस्तपसा सर्वाणि सिद्ध्यन्ति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2489]

— ***सूत्रकृतांग सटीक** 1/12*

दान देने से मनुष्य को उत्तमोत्तम भोग की प्राप्ति होती है। शील की रक्षा करने से उत्तम गति प्राप्त होती है। बारह प्रकार की भावनाओं का चिन्तन करने से जीव मोक्षगामी होता है और तपश्चर्या करने से सभी कार्य सिद्ध होते हैं।

266. दया, धर्म का मूल

दयाइ धम्मो पसिद्धमिणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2489]

— ***धर्मरत्नप्रकरण सटीक** 90*

"दया धर्म का मूल है", यह प्रसिद्ध है।

267. अभय

अभउ त्ति धम्ममूलं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2489]

— ***धर्मरत्नप्रकरण सटीक** - 90*

अभय धर्म का मूल है।

268. दान, एक वशीकरण मंत्र

दानेन सत्त्वानि वशीभवन्ति,
दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम् ।
परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानाद्,
तस्माद्धि दानं सततं प्रदेयम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2490]

— ***धर्मरत्नप्रकरण** 1/8*

दान एक वशीकरण मंत्र है जो सभी प्राणियों को मोह लेता है। दान से शत्रुता भी नष्ट हो जाती है और दान देने से पराए भी अपने हो जाते हैं। इसलिए हमेशा दान देते रहना चाहिए।

269. अभयदान

दाणाण सेट्ठं अभयप्पदाणं ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2490]

– ***सूत्रकृतांग 1/6/23***

अभयदान ही सर्वश्रेष्ठ दान है ।

270. संगति से गुण-दोष

संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2493]

– ***धर्मसंग्रह 1/6***

दोष और गुण संसर्ग से ही आते हैं ।

271. श्रमण द्वारा अकरणीय

गिहिणो वेयावडियं, न कुज्जा अभिवायण-
वंदणपूयणं च ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2496]

– ***हारिभद्रीयाष्टक सटीक 2/3***

श्रमण-श्रमणी को गृहस्थ का वैयावृत्य (सेवा), अभिवादन, वन्दन और पूजन नहीं करना चाहिए ।

272. उत्तमोत्तम दान

दानात्कीर्तिः सुधाशुभ्रा, दानात् सौभाग्यमुत्तमम् ।
दानात्कामार्थ मोक्षाः स्यु-र्दानधर्मो वरः ततः ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2499]

– ***पंचाशक सटीक विवरण - 2***

दान देने से संसार में चारों तरफ कीर्ति फैलती है । दान देने से ही उत्तम सौभाग्य प्राप्त होता है और दान देने से अर्थ की प्राप्ति, सभी शुभकामनाओं की शुद्धि तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है । इसलिए सभी धर्मों में दानधर्म सर्वोत्तम कहा गया है ।

273. धन्य कौन ?

ते धन्ना कयपुन्ना, जणओ जणणी अ सयणवग्गो अ ।
जेसिं कुलम्मि जायइ, चारित्तधरो महापुत्तो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2508]

— ***धर्मसंग्रह 2/256***

वे माता-पिता और स्वजनवर्ग धन्य हैं, कृतपुण्य हैं, जिनके वंश में चारित्रवान् महान् पुत्र उत्पन्न होते हैं।

274. सुख-दुःख-लक्षण

सर्वं परवशं दुःखं, सर्वं आत्मवशं सुखं।
एतदुक्तं समासेन, लक्षणं सुखदुःखयोः॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2549]

— ***मनुस्मृति 4/160***

जो पराधीन है, पराए वश में है, वह सब दुःख है और जो अपने अधीन है, अपने वश में है, वह सब सुख है। यह सुख-दुःख का संक्षिप्त लक्षण है।

275. दुःखित-अदुःखित

दुक्खी दुक्खेणं फुडे, नो अदुक्खी दुक्खेणं फुडे।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2550]

— ***भगवती 7/1/14***

जो दुःखित है, कर्मबद्ध है, वही दुःख या बन्धन को पाता है। जो दुःखित नहीं है, बद्ध नहीं है, वह दुःख या बन्धन को नहीं पाता।

276. स्वकृत दुःख

अत्तकडे दुक्खे नो परकडे दुक्खे।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2550]

— ***भगवती 17/4/13***

दुःख स्वकृत है, अपना किया हुआ है; अर्थात् किसी अन्य का किया हुआ नहीं है।

277. कर्म

दुक्खी दुक्खं परियादियति।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2550]

— *भगवती - 7/1/15 [3]*

कर्म से युक्त पुरुष ही कर्म को ग्रहण करता है ।

278. दुःखी मोहग्रस्त

दुक्खी मोहे पुणो पुणो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2551]

— *सूत्रकृतांग 1/2/3/12*

दुःखी प्राणी बार-बार मोहग्रस्त होता है ।

279. स्वपूजा-प्रशंसा-परहेज

निर्व्विदेज्जा सिलोग पूयणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2551]

— *सूत्रकृतांग - 1/2/3/12*

अपनी श्लाघा-प्रशंसा और पुजा-प्रतिष्ठा से दूर ही रहे ।

280. आत्मवत् सब में

आयतुलं पाणेहिं संजते ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2551]

— *सूत्रकृतांग 1/2/3/12*

संयमी साधु समस्त प्राणियों को आत्मतुल्य देखें ।

281. परदुःखकातर

परदुक्खेण दुक्खिआ विरला ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2552]

— *प्राकृत व्याकरण, पाद - 2*

दूसरों के दुःख को देखकर कोई विरले पुरुष ही दुःखी होते हैं ।

282. किससे, कितनी दूर ?

शकटं पञ्चहस्तेन, दशहस्तेन शृङ्गिणम् ।
हस्तिनं शतं हस्तेन, देशत्यागेन दुर्जनम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2555]

– वाचस्पत्याभिधान (कोश)
चाणक्यनीतिशास्त्र – 7/7

व्यक्ति को गाड़ी-वाहन से पाँच हाथ दूर चलना चाहिए। सींगवाले हिंसक जीवों से दश हाथ दूर रहना चाहिए और हाथी से सौ हाथ दूर रहना चाहिए, किन्तु दुर्जन से तो उस प्रदेश को ही छोड़कर रहने में सुरक्षा है, जहाँ वह दुर्जन निवास करता है।

283. जड़-चेतन

जदत्थिणंलोगे तं सव्वं दुपओआरं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2559]
– स्थानांग – 2/2/1/49

विश्व में जो कुछ भी है, वह इन दो शब्दों में समाया हुआ है-जड़ और चेतन।

284. प्रमाद मत करो

दुमपत्तए पंडुयए, जहा निवडइ रायगणाण अच्चए ।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2569]
– उत्तराध्ययन – 10/1

जैसे वृक्ष के पत्ते समय आने पर पीले पड़ जाते हैं एवं पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं, उसीप्रकार मनुष्य का जीवन भी आयु के समाप्त होने पर क्षीण हो जाता है। अतएव हे गौतम ! क्षणभर के लिए भी प्रमाद मत कर।

285. कर्म-रज की सफाई

विहुणाहि रयं पुरे कडं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2569]
– उत्तराध्ययन – 10/3

पूर्व संचित कर्म रूपी रज को साफ करो।

286. जीवन बाधाओं से परिपूर्ण

जीवियए बहुपच्चवायए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2569]

— ***उत्तराध्ययन* - 10/3**

यह जीवन अनेक विघ्न-बाधाओं से भरा हुआ है ।

287. दुर्लभ क्या ?

दुल्लभे खलु माणुसे भवे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2570]

— ***उत्तराध्ययन* 10/4**

मनुष्यजीवन निश्चय ही बड़ा दुर्लभ है ।

288. दुर्लभ आर्यत्व

लद्धूण वि माणुसत्ताणं आयरियत्तं पुणरावि दुल्लहं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2570]

— ***उत्तराध्ययन* 10/16**

अति दुर्लभ मनुष्यभव प्राप्त करके भी आर्य-व्यवस्था (आर्यदेश में जन्म प्राप्त होना) मिलना और भी कठिन है ।

289. दुर्लभ-धर्मश्रद्धा

लद्धूण वि उत्तमं सुइं, सद्दहणा पुणरावि दुल्लहा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2570]

— ***उत्तराध्ययन* - 10/19**

उत्तम धर्म श्रवण करके भी उसपर श्रद्धा (रुचि) होना और भी कठिन है ।

290. यथाकर्म

संसरइ सुभासुभेहिं कम्मेहिं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2570]

— ***उत्तराध्ययन* 10/15**

जीव अपने शुभ-अशुभ कर्मों के अनुसार नरक-तिर्यंच आदि चतुर्गति में भ्रमण करता है ।

291. जीव प्रमादी

जीवो पमाय बहुलो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2570]

— ***उत्तराध्ययन 10/15***

जीव स्वभाव से ही बहुत प्रमादी है।

292. कर्म-विपाक

गाढा य विवागकम्मुणो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2570]

— ***उत्तराध्ययन - 10/17***

कर्मों के फल बड़े गाढ़ होते हैं।

293. इन्द्रियाँ, दुर्लभ

अहीण पंचेंदियता हु दुल्लहा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2570]

— ***उत्तराध्ययन 10/17***

पाँचों इन्द्रियों की परिपूर्णता प्राप्त होना दुर्लभ है।

294. धर्मश्रुति, दुर्लभ

उत्तमधम्म सुई हु दुल्लहा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2570]

— ***उत्तराध्ययन - 10/18***

उत्तम धर्मश्रुति निश्चित ही दुर्लभ है।

295. प्रमाद उचित नहीं

से सव्वबले य हायई,
समयं गोयम ! मा पमायए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2571]

— ***उत्तराध्ययन - 10/26***

शरीर का सब बल क्षीण होता जा रहा है। अतएव हे गौतम ! क्षणभर के लिए भी प्रमाद उचित नहीं है।

296. विरले साधक

धम्मंपिह सद्दहंतया, दुल्लभया काएण फासया ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2571]

– *उत्तराध्ययन 10/20*

उत्तम धर्म में श्रद्धा होने पर भी मन-वचन और काया से उसका आचरण करनेवाले साधक निश्चय ही दुर्लभ है। वे तो विरले ही होते हैं।

297. प्रमाद-त्याग

से घाणबले य हायई,
समयं गोयम ! मा पमायए ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2571]

– *उत्तरा. 10/23*

घ्राणेन्द्रिय का सब बल क्षीण होता जा रहा है, इसलिए हे गौतम ! क्षणभर के लिए भी प्रमाद उचित नहीं है।

298. मा प्रमाद

से जिब्भबले य हायई,
समयं गोयम ! मा पमायए ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2571]

– *उत्तराध्ययन 10/24*

रसनेन्द्रिय का सब बल क्षीण होता जा रहा है। अतएव हे गौतम ! क्षणभर के लिए भी प्रमाद उचित नहीं है।

299. प्रमाद नहीं

से फासबले य हायई,
समयं गोयम ! मा पमायए ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2571]

– *उत्तराध्ययन 10/25*

स्पर्शेन्द्रिय का सब बल क्षीण होता जा रहा है। अतएव हे गौतम ! क्षणभर के लिए भी प्रमाद मत कर।

300. प्रमाद मत करो

से चक्खुबले य हायइ,
समयं गोयम ! मा पमायए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2571]
— *उत्तराध्ययन - 10/22*

चक्षुरिन्द्रिय का समूचा बल क्षीण होता जा रहा है। अतएव हे गौतम ! क्षणभर के लिए भी प्रमाद उचित नहीं है।

301. प्रमाद-वर्जन

से सोयबले य हायई,
समयं गोयम मा पमायए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2571]
— *उत्तराध्ययन 10/21*

कर्णेन्द्रिय का सारा बल क्षीण होता जा रहा है। अतएव हे गौतम ! क्षणभर के लिए भी प्रमाद उचित नहीं है।

302. निर्लिप्त बनो

वोच्छिन्द सिणेहमप्पणो, कुमुयं सार इयं व पाणियं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2572]
— *उत्तराध्ययन 10/28*

जैसे शरदऋतु का कुमुद जल में लिप्त नहीं होता, वैसे ही तुम अपने स्नेह का विच्छेद कर निर्लिप्त बनो।

303. भोग, पुनः न चाटो

मावंतं पुणो विआविए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2572]
— *उत्तराध्ययन 16/29*

त्याग की हुई भोग्य वस्तुओं को पुनः भोगने की इच्छा मत करो अर्थात् वमन को मत चाटो।

304. उद्बोधन

तिण्णो हु सि अन्नवं महं किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2573]

— ***उत्तराध्ययन* 10/34**

तू महासमुद्र को तैर चुका है। किनारे आकर फिर क्यों बैठ गया है ?

305. मोक्ष

खेमं च सिवं अणुत्तरं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2573]

— ***उत्तराध्ययन* - 10/35**

मोक्ष क्षेमस्वरूप है, शिवस्वरूप है और अनुत्तर है।

306. विचरण

बुद्धे परिनिव्वुए चरे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2573]

— ***उत्तराध्ययन* - 10/36**

प्रबुद्ध और उपशान्त होकर विचरण करें।

307. शान्ति-मार्ग

संतिमग्गं च बूहए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2573]

— ***उत्तराध्ययन* 10/36**

शांति के मार्ग की संवृद्धि करते रहो।

308. काल-निरपेक्ष

कालं अणवकंखमाणो विहरइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2598]

— ***उपासकदशा* 1/14**

साधक कष्टों से जूझता हुआ मृत्यु से अनपेक्ष होकर रहे।

309. कोयला होत न उजरा

तओ दुसन्नप्पा पन्नत्ता - तं जहा - दुट्ठे, मूढे वुग्गाहिते ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2600]

— *स्थानांग - 3/3/4/204*

दुष्ट, मूर्ख और बहके हुए को प्रतिबोध देना-समझा पाना बहुत कठिन है ।

310. कलह से असमाधि

कलहकरो डमरकरो असमाहिकरो ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2601]

— *दशाश्रुतस्कन्ध-1*

— *आवश्यकनिर्युक्ति 2/1087*

कलह - झगड़ा करनेवाला असमाधि को उत्पन्न करनेवाला है ।

311. दुःशील, गर्दभवत्

दुस्सीलाओ खरो विव ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2601]

— *आवश्यक कथा*

दुःशील (निर्लज्ज दुष्ट) व्यक्ति विष्टाभक्षक गधे के समान होता है ।

312. देवाकाङ्क्षा

ततो ठाणाइ देवेपीहेज्जा । तं जहा-माणुस्सगं भवं, आरितेखेत्ते जम्मसुकुलपच्चायार्ति ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2607]

— *स्थानांग 3/3/3/184*

देवता भी तीन बातों की इच्छा करते रहते हैं-मानव-जीवन, आर्यक्षेत्र में जन्म और श्रेष्ठ कुल की प्राप्ति ।

313. अंधे को दर्पण

जो वि पगासो बहुसो, गुणिओ पच्चखओ न उवलद्धो ।
जच्चंधस्स व चंदो फुडो वि संतो तहा स खलु ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2630]

— ***बृहदावश्यकभाष्य 1224***

शास्त्र का बार-बार अध्ययन कर लेने पर भी यदि उसके अर्थ की साक्षात् स्पष्ट अनुभूति न हुई हो तो वह अध्ययन वैसा ही अप्रत्यक्ष रहता है, जैसा कि जन्मांध के समक्ष चंद्रमा प्रकाशमान् होते हुए भी अप्रत्यक्ष ही रहता है।

314. वैर का फल

वेराणुबद्धा नरगं उवेंति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2645]

— ***उत्तराध्ययन - 4/2***

जो वैर की परम्परा बढ़ाते हैं, वे नरकगामी होते हैं।

315. धर्म

वचनादविरुद्धाद्यदनुष्ठानं यथोदितम् ।
मैत्र्यादिभावसमिश्रं, तद्धर्म इति कीर्त्यते ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2665]

— ***धर्मबिन्दु 1/3 एवं धर्मसंग्रह 1***

परस्पर अविरुद्ध वचन से शास्त्र में कहा हुआ मैत्री आदि भाव से युक्त जो अनुष्ठान है, वह धर्म कहलाता है।

316. धर्म कैसा ?

धर्मश्चित्तप्रभवो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2666]

— ***षोडशकप्रकरण 3 विवरण***

शुद्ध और पुष्ट चित्त ही धर्म है।

317. न कपट, न झूठ

सादियं ण मुसं बूया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2666]

— ***सूत्रकृतांग - 1/8/19***

मन में कपट रखकर झूठ मत बोलो ।

318. श्रुत धर्म-चारित्रधर्म

दुविहो उ भावधम्मो, सुय धम्मो खलु चरित्त धम्मो य ।
सुय धम्मे सज्झाओ, चरित्त धम्मे समणधम्मे ॥
(दुविहो लोगुत्तरिओ, सुय धम्मो खलु चरित्त धम्मो य)

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2667-2669]
— *दशवैकालिक निर्युक्ति 1/43*

लोकोत्तर धर्म दो तरह का होता है-एक श्रुतधर्म और दूसरा चारित्र-धर्म । स्वाध्याय-आगम के पठन-पाठन को श्रुत और सम्यग्दृष्टि साधु के आचरण को चारित्र कहते हैं ।

319. इन्द्रिय दान्त

सव्वतो संवुडे दंते, आयाणं सुसमाहरे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2667]
— *सूत्रकृतांग - 1/8/20*

सभी तरह से संवृत्तशील होता हुआ तथा इन्द्रियों का दमन करता हुआ संयमी आदानसमिति का भलीभाँति आचरण करे ।

320. श्रमण कौन ?

यः समः सर्वभूतेषु, त्रसेषु स्थावरेषु च ।
तपश्चरति शुद्धात्मा, श्रमणोऽसौ प्रकीर्तितः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2669]
— *आगमीयसूक्तावली: — पृ. 2*
नन्दिसूक्तानि 2/26

जो त्रस और स्थावर समस्त प्राणियों पर समभाव रखता है और जो शुद्धात्म तप में विचरण करता है उसे 'श्रमण' कहते हैं ।

321. मैत्री

परहित चिन्ता मैत्री ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2672]

— *षोडशक प्रकरण विवरण 4/15*

— *अध्यात्मकल्पद्रुम 12*

अन्य जीवों के हित की चिन्ता करना मैत्रीभाव है ।

322. करुणा

परदुःख विनाशिनी तथा करुणा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2672]

— *षोडशक विवरण 4/15*

दूसरों के दुःख को दूर करना करुणा भावना है ।

323. उपेक्षा

परदोषोपेक्षणमुपेक्षा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2672]

— *षोडशकप्रकरण विवरण 4/15*

एवं अध्यात्मकल्पद्रुम - 12

अन्य के दोषों की उपेक्षा करना माध्यस्थ भावना है ।

324. प्रमोद

परसुखतुष्टिर्मुदिता ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2672]

— *षोडशकप्रकरण विवरण 4/15*

एवं अध्यात्मकल्पद्रुम - 12

दूसरों के सुख को देखकर प्रमुदित होना प्रमोदभावना है ।

325. उत्थान-पतन

जे पुव्वुट्ठाई, णो पच्छा-णिवाती ।

जे पुव्वुट्ठाई, पच्छा णिवाती ।

जे णो पुव्वुट्ठाई, णो पच्छा णिवाती ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2673]

— *आचारांग - 1/5/2/158*

कोई पुरुष पहले उठता है, बाद में कभी नहीं गिरता। जीवनभर उत्थित ही रहता है। कोई पुरुष पहले उठता है और बाद में गिर जाता है। कोई पुरुष न पहले उठता है और न बाद में गिरता है।

326. धर्म-मूल

जीवदया सच्चवयणं परधणपरिवज्जणं सुसीलं च।
खंति पंचिंदियनिग्गहो य, धम्मस्स मूलाइं॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2673]
— ***दर्शनशुद्धिसटीक*** *2/1*

जीवदया, सत्यवचन, परधन का त्याग, शील-ब्रह्मचर्य, क्षमा और पाँचों इन्द्रियों का निग्रह-ये धर्म के मूल हैं।

327. अवसर दुर्लभ

जुद्धारिहं खलु दुल्लहं।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2674]
— ***आचारांग*** *- 1/5/3/159*

विकारों से युद्ध करने के लिए फिर यह अवसर मिलना दुर्लभ है।

328. युद्ध, विकारों से

इमेण चेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ ?

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2674]
— ***आचारांग*** *- 1/5/3/159*

तू अपने अन्तर विकारों के साथ ही युद्ध कर। बाहर दूसरों के साथ युद्ध करने से तुझे क्या मिलेगा ?

329. शील

सया सीलं संपेहाए।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2674]
— ***आचारांग*** *- 1/5/3/158*

सदा शील का अनुशीलन करें।

330. स्वाध्याय-ध्यान का काल

पूव्वावररायं जतमाणे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2674]

— *आचारांग - 1/5/3/158*

पंडित पुरुष रात्रि के प्रथम और अन्तिम प्रहर में स्वाध्याय और ध्यान में प्रयत्नशील रहे ।

331. अहिंसा

उवेहमाणे पत्तेयं सातं वण्णादेसी
णारभे कंचणं सव्वलोए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2674]

— *आचारांग - 1/5/3/160*

प्रत्येक प्राणी की शाता को देखते हुए यश के इच्छुक साधक समस्त लोक में किंचित् भी हिंसा न करे ।

332. अज्ञानी जीव

चुते हु बाले गब्भातिसु रज्जति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2674]

— *आचारांग - 1/5/3/159*

पथभ्रष्ट होनेवाला अज्ञानीजीव गर्भ आदि के दुःख चक्र में फँस जाता है ।

333. मुक्त

भवे अकामे अझंझे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2674]

— *आचारांग - 1/5/3/58*

काम और लोभेच्छा से मुक्त बन जाएँ ।

334. इन्द्रिय-संयम

संजमति नो पगब्भति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 3674]

— ***आचारांग - 1/5/3/160***

साधक इन्द्रियों का संयम करता है, उनका उच्छृंखल व्यवहार नहीं करता है।

335. पाप, अकरणीय

अकरणिज्जं पावकम्मं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2675]

— ***आचारांग - 1/5/3/160***

पापकर्म करने योग्य नहीं है।

336. सम्यक्त्व, अशक्य

ण इमं सक्कं सिढिलेहिं अद्दिज्जमाणेहिं गुणासाएहिं ।
वंकासमायरेहिं पमत्तेहिं गारमावसतेहिं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2675]

— ***आचारांग - 1/5/3/161***

इस सम्यक्त्व का सम्यक् रूप से आचरण करना उनके द्वारा शक्य नहीं हैं, जो शिथिल हैं, आसक्ति मूलक स्नेह से आर्द्र बने हुए हैं, विषयास्वादन में लोलुप हैं, कुटिल हैं; प्रमादी हैं और जो गृहवासी हैं।

337. धर्माचरण तबतक

जरा जाव न पीलेइ, वाही जाव न वड्ढई ।
जाविंदिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2676]

— ***दशवैकालिक - 8/35***

जबतक बुढ़ापा नहीं आता है; जबतक व्याधियों का जोर नहीं बढ़ता है; जबतक इन्द्रियाँ क्षीण नहीं होती हैं, तबतक बुद्धिमान् को जो भी धर्माचरण करना हो, कर लेना चाहिए।

338. वैर से पाप-वृद्धि

वेराणुगिद्धे णिचयं करेंति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2676]

— ***सूत्रकृतांग - 1/10/9***

वैरभाव में गृद्ध आत्मा कर्मों के समूह को अपनी ओर खिंचती है।

339. धर्म-धन

धर्मवित्ता हि साधवः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2676]

— ***धर्मबिन्दु - 1/31***

साधु का तो धर्म ही धन है अर्थात् साधु धर्मरूपी धनवाले होते हैं।

340. मृत्यु-चिन्तन

नेह लोके सुखं किञ्चि-च्छादितस्याहंसाभृशम् ।
मितं च जीवितं नृणां, तेन धर्मे मतिं कुरु ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2676]

— ***आवश्यक मलयगिरि - 1/2***

अज्ञान से ढंके हुए इस संसार में जो सुख भासमान है वह वास्तव में कुछ भी सुख नहीं है। हर सुख का अन्त दुःख है एवं मनुष्यों का जीवन परिमित आयुवाला है, क्षणभंगुर है, न जाने कब मृत्यु आ जाय, यही चिन्तन करते हुए अपनी बुद्धि को धर्म में लगाओ।

341. धर्म-पुरुषार्थ

भवकोटी दुष्प्रापा - मवाप्य नृभवाऽऽदि सकलसामग्रीम् ।
भवजलधियानपात्रे, धर्मे यत्नः सदा कार्यः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2676]

— ***संघाचार भाष्य 1 अधि. 1 प्रस्तावना.***

करोड़ों भवों में दुर्लभ मनुष्य जीवन की समूची सामग्री पाकर संसार-सागर को पार करने में नौका के समान धर्म में सदा प्रयास करना चाहिए।

342. उठ, जाग मुसाफिर !

संबुज्झह किं न बुज्झह ?

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2677]

— *सूत्रकृतांग* - 1/2/1/1

अभी इस जीवन में समझो, क्यों नहीं समझ रहे हो ?

343. मनुष्यत्व-दुर्लभ

णो सुलभं पुणरावि जीवियं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2677]

— *सूत्रकृतांग* - 1/2/1/1

यह मनुष्य जीवन फिर मिलना आसान नहीं है ।

344. बोधि-दुर्लभ

संबोही खलु पेच्च दुल्लभा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2677]

— *सूत्रकृतांग* - 1/2/1/1

भवान्तर में सम्यग्बोधि (अन्तर्जागरण) मिलना मुश्किल है ।

345. बीता नहीं लौटता

णो हूवणमंति रातिओ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2677]

— *सूत्रकृतांग* 1/2/1/1

बीती हुई रातें फिर लौटकर नहीं आती ।

346. धर्मसर्वस्व

धम्मो ताणं, धम्मो सरणं धम्मो गइ पइट्ठा य ।
धम्मेण सुचरिएण य, गम्मइ अजरामरं ठाणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2680]

— **तन्दुलवेयालिय पयन्ना** - 171

धर्म त्राण है, धर्म शरण है, धर्म ही गति है और धर्म ही आधार है । धर्म की सम्यक् आराधना करने से जीव अजर-अमर स्थान को प्राप्त होता है ।

347. आर्य धर्म

पीईकरो वण्णकरो, भासकरो, जसकरो रईकरो य ।
अभयकर निव्वुइकरो, पारत्त विइज्जओ धम्मो ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2680]
– ***तंदुलवैयालिय पयन्ना*** *- 172*

यह आर्य धर्म इह-परलोक में प्रीति, कीर्ति, रूप, तेजस्विता, मिष्टवाणी, यश, रति, अभय एवं आत्मिक-सुख का करनेवाला है ।

348. श्रेष्ठ मंगल

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।
देवावि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2683]
– ***दशवैकालिक*** *- 1/1*

अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म श्रेष्ठ मंगल है । जिसका मन ऐसे धर्म में स्थिर है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं ।

349. अन्यायोपार्जित द्रव्य-फल

पापेनैवार्थरागान्धः, फलमाप्नोति यत् क्वचित् ।
बिडिशामिषवत् तत् तमविनाश्य न जीर्यति ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2683]
– ***धर्मबिन्दु सटीक*** *1/7 [4]*

यदि द्रव्य के प्रेम में अंधा बना व्यक्ति कदाचित् अन्यायरूप पाप से द्रव्य-फल की प्राप्ति करता है किंतु, अंततः जैसे काँटे में लगी माँस की गोली मछली का नाश करती है, वैसे ही वह द्रव्य उसका नाश किए बिना नहीं पचता ।

350. आय-सन्तुलन

पादमायान्निधिं कुर्यात्, पादं वित्ताय घट्टयेत् ।
धर्मोपभोगयोः पादं, पादं भर्तव्यपोषणे ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2683]

— *धर्मबिन्दु सटीक 1/25 [19]*

अपनी आय के चार भाग करके, उसमें से एक भाग घर में अमानत या संग्रह करके रखे; ताकि वह आपत्ति के समय काम आवे। एक भाग व्यापार आदि में लगावे जिससे पैसों में वृद्धि हो। एक भाग धर्म के लिए तथा अपने उपभोग के लिए रखे और एक भाग (चतुर्थ) अपने आश्रित व कुटुम्बीजनों के भरणपोषण में खर्च करें।

351. आय-विभाग

आयादर्द्धं नियुञ्जीत, धर्मे समधिकं ततः।
शेषेण शेषं कुर्वीत, यत्नतस्तुच्छमैहिकम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2683]

— *धर्मबिन्दु सटीक 1/25 [20]*

धन के दो भाग करे, यदि हो सके तो एक भाग से कुछ अधिक धर्म में खर्च करे और शेष-धन में से तुच्छ ऐसा इस लोक सम्बन्धी अपना शेष कार्य करे।

352. धर्म-गुण

धम्मो गुणा अहिंसा।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2685]

— *दशवैकालिकसूत्रसटीक - 1*

अहिंसा ही धर्म का गुण है।

353. भ्रमरवत् भिक्षा

विहंगमा व पुप्फेसु दाणभत्ते सणे रया।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2688]

— *दशवैकालिक 1/3*

श्रमण गृहस्थ से उसीप्रकार दानस्वरूप भिक्षा आदि ले, जिसप्रकार भ्रमर पुष्पों से रस लेता है।

354. ज्ञानी, मधुकरवत्

महुकार समाबुद्धा।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2688]

— *दशवैकालिक - 1/5*

आत्मद्रष्टा साधक मधुकर के समान होते हैं। वे कहीं किसी एक व्यक्ति या वस्तु पर प्रतिबद्ध नहीं होते। जहाँ रस (गुण) मिलता है, वहीं से ग्रहण कर लेते हैं।

355. जीओ और जीने दो

वयं च वित्तिं लब्भामो न य कोई उवहम्मइ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2688]

— *दशवैकालिक - 1/4*

हम जीवनोपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति इसप्रकार करें कि किसी को कुछ कष्ट न हो।

356. उत्कृष्ट मंगल

उक्किट्ठं मंगलं धम्मो।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2689]

— *दशवैकालिकसूत्रसटीक - 1*

धर्म ही उत्कृष्ट मंगल है।

357. धर्महीन को धिक्कार

धिग्धर्मरहितं नरम्।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2690]

— *स्थानांग 3/3*

धर्म से हीन मनुष्य को धिक्कार है।

358. उपेक्षा किसकी नहीं ?

णो अत्ताणं आसादेज्जा, णो परं आसादेज्जा।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2693]

— *आचारांग - 1/6/5/197*

न अपनी अवहेलना करो और न दूसरों की।

359. जीव अनाशातना

णो अण्णाइं पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं आसादेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2693]

— *आचारांग - 1/6/5/197*

अन्य किसी भी प्राणी, भूत, जीव या सत्त्व का निरादर मत करो ।

360. धर्मोपदेश-दृष्टि

णो अन्नस्सहेउं धम्ममाइक्खेज्जा ।
णो पाणस्स हेउं, धम्ममाइक्खेज्जा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2694]

— *सूत्रकृतांग 2/1/13*

खाने-पीने की लालसा से किसी को धर्म का उपदेश नहीं करना चाहिए । अपने प्राणों की लालसा से भी धर्मोपदेश नहीं देना चाहिए ।

361. कर्म-निर्जरा

अगिलाए धम्ममाइक्खेज्जा,
नन्नत्थ कम्मनिज्जरट्ठाए धम्ममाइक्खेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2694]

— *सूत्रकृतांग 2/1/13*

साधक बिना किसी भौतिक इच्छा के प्रशान्त भाव से एकमात्र कर्म-निर्जरा के लिए धर्म का उपदेश करे ।

362. त्रिधा-धर्मपरीक्षक

बालः पश्यति लिङ्गं, मध्यमाबुद्धिर्विचारयंति वृत्तम् ।
आगमतत्त्वं तु बुधः, परीक्षते सर्वयत्नेन ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2694]

— *षोडशकप्रकरण 1/2*

धर्मपरीक्षक तीन प्रकार के होते हैं-(१) बाल, (२) मध्यम और (३) पण्डित । बाल परीक्षक मुख्यरूप से बाह्याकार (वेष) को देखता है । मध्यम परीक्षक मुख्यरूप से आचार को देखता है और पण्डित परीक्षक आगम तत्त्व को ही देखता है; क्योंकि धर्म-अधर्म की व्यवस्था आगम से होती है ।

363. प्रज्ञा से धर्म-परीक्षा

तं शब्दमात्रेण वदन्ति धर्मं,
विश्वेऽपि लोका न विचारयन्ति ।
स शब्दसाम्येऽपि विचित्रभेदैः,
विभिद्यते क्षीरमिवार्चनीयः ॥
लक्ष्मीं विधातुं सकलां समर्थं,
सुदुर्लभं विश्वजनीनमेनम् ।
परीक्ष्य गृह्णन्ति विचारदक्षाः,
सुवर्णवद् वञ्चनभीतचित्ताः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2696]
— ***धर्मबिन्दुसटीक* 2/33 [87-88]**

इस विश्व में कई लोग शब्द मात्र से सब को धर्म कहते हैं, परन्तु कौन-सा धर्म सत्य है ? ऐसा विचार नहीं करते । 'धर्म' शब्द समान होने पर भी वह विचित्र भेदों के कारण भिन्न-भिन्न हैं । अत: शुद्ध दूध की तरह परीक्षा करके उसे मान्य करना चाहिए । जैसे ठगे जाने के भय से बुद्धिमान् व्यक्ति स्वर्ण की परीक्षा करके उसे खरीदते हैं, वैसे ही सर्वधन देने में समर्थ, अतिदुर्लभ तथा जगत् हितकारी श्रुतधर्म को भी परीक्षा करके धीमान् व्यक्ति ग्रहण करते हैं ।

364. हिंसा हेय

सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता,
न हंतव्वा न अज्जावेयव्वा न परिघितव्वा,
न परियावेयव्वा न उद्देवेयव्वा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2697]
एवं [भाग 7 पृ. 489]
— ***आचारांग* - 1/4/2/126**

किसी भी प्राणी, किसी भी भूत, किसी भी जीव और किसी भी सत्त्व को नहीं मारना चाहिए । न उनपर अनुचित शासन करना चाहिए; न उन्हें गुलामों की तरह पराधीन बनाना चाहिए, न उन्हें परिताप देना चाहिए और न उनके प्रति किसीप्रकार का उपद्रव करना चाहिए । अहिंसा वस्तुत: आर्य (पवित्र) सिद्धान्त है ।

365. मत-मतान्तर-निष्कर्ष

पुव्वं णिकाय समयं पत्तेयं पुच्छिस्सामि-हं भो पवाइया किं भे सायं दुक्खं, उयाहु असायं ? समिया पडिवण्णे यावि एवं बूया-सव्वेसिं पाणाणं, सव्वेसिं भूयाणं सव्वेसिं जीवाणं, सव्वेसिं सत्ताणं असायं अपरिणिव्वाणं महब्भयं दुक्खं त्ति बेमि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2697]

— ***आचारांग 1/4/2/139***

सर्व प्रथम विभिन्न मत-मतान्तरों के प्रतिपाद्य सिद्धान्त को जानना चाहिए और फिर हिंसा प्रतिपादक मतवादियों से पूछना चाहिए कि "हे प्रवादियों ! तुम्हें सुख प्रिय लगता है या दुःख ?" "हमें दुःख अप्रिय है, सुख नहीं" यह सम्यक् स्वीकार कर लेने पर उन्हें स्पष्ट कहना चाहिए कि "तुम्हारी ही तरह विश्व के समस्त प्राणी, जीव, भूत और सत्त्वों को भी दुःख अशान्ति (व्याकुलता) देनेवाला है एवं महाभय का कारण है ।

366. संसार-परिभ्रमण

पूढो पूढो जाइं पकप्पेंति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2697]

— ***आचारांग - 1/4/2/134***

यह जीवात्मा भिन्न - योनियों में बार-बार परिभ्रमण करती रहती है ।

367. आत्मतुला-कसौटी

सव्वेसिं पाणाणं सव्वेसिं भूताणं सव्वेसिं जीवाणं सव्वेंसि सत्ताणं असायं अपरिणिव्वाणं महब्भयं दुक्खं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2697]

— ***आचारांग - 1/4/2/139***

जैसे आपको दुःख प्रिय नहीं, वैसे ही सभी प्राणियों, सभी भूतों, सभी जीवों और सभी सत्त्वों के लिए दुःख अप्रिय, अशान्तिजनक और महाभयंकर है ।

368. मृत्यु

नाणागमो मच्चुमुहस्स अत्थि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2697]
एवं [भाग 6 पृ. 59]

— *आचारांग - 1/4/2/131*

मृत्यु के मुख में पड़े हुए प्राणी को मृत्यु न आए, यह कभी नहीं हो सकता ।

369. शीलखण्डन से मृत्यु श्रेष्ठ

वरं प्रवेष्टुं ज्वलितं हुताशनम्,
न वापि भग्नं चिरसंचितं व्रतम् ।
वरं हि मृत्युः सुविशुद्ध चेतसो,
न वापि शीलं स्खलितस्य जीवितम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2700]

— *सूत्रकृतांग सटीक 1/2/2*

भड़कती हुई आग में जलकर मर जाना श्रेष्ठ है, परन्तु कई जन्मों के बाद मिला हुआ संयमरूपी व्रत (रत्न) का खण्डन करना उचित नहीं है । जिसका अन्तःकरण सब प्रकार से शुद्ध है, शीलरक्षा के लिए उसकी मृत्यु भी हो जाए तो श्रेष्ठ है, किन्तु खण्डित शील होकर अपमानपूर्वक संसार में जीना ठीक नहीं है ।

370. करे कौन ? भरे कौन ?

अन्ने हरंति तं वित्तं, कम्मी कम्मेहिं कच्चति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2701]

— *सूत्रकृतांग - 1/9/4*

यथावसर संचित धन को तो दूसरे उड़ा देते हैं और संग्रही को अपने पापकर्मों का दुष्कर्म भोगना पड़ता है ।

371. विषयासक्त

भोगे अवयक्खता, पडंति संसारसागरे घोरे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2701]

— *ज्ञाताधर्मकथा - 1/9/31*

जो मनुष्य विषय भोगों में आसक्त रहते हैं; वे दुस्तर संसार-समुद्र में डूब जाते हैं।

372. कोई रक्षक नहीं

माता-पिता ण्हुसाभाया, भज्जा पुत्ता य ओरसा।
णालं ते तव ताणाए, लुप्पंतस्स सकम्मुणा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2701]

— *सूत्रकृतांग 1/9/5*

अपने पापकर्म से पीड़ित होते हुए इस संसार में तुम्हारी रक्षा के लिए माता-पिता-पुत्रवधु, पत्नी, भाई और सगे पुत्र आदि कोई भी समर्थ नहीं है।

373. जिनाज्ञानुसार धर्माचरण

निम्ममो निरहंकारो, चरे भिक्खू जिणाहितं।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2701]

— *सूत्रकृतांग - 1/9/6*

ममता और अहंकार रहित होता हुआ भिक्षु जिनाज्ञानुसार धर्म का आचरण करें।

374. न आरम्भ, न परिग्रह

मणसाकायवक्केणं णारंभी ण परिग्गही।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2701]

— *सूत्रकृतांग - 1/9/9*

मन वचन और काया से जीवनिकाय का न तो आरम्भ करें और न ही परिग्रह करे।

375. परिग्रह वैर

परिग्गहे निविट्ठाणं वेरं तेसिं पवड्ढइ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2701]

– *सूत्रकृतांग 1/9/3*

जो परिग्रह (संग्रहवृत्ति) में व्यस्त हैं, वे संसार में अपने प्रति वैर ही बढ़ाते हैं।

376. काम-भोग, दुःख भरे

आरम्भ संभियाकामा, न ते दुक्ख विमोयगा ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2701]

– *सूत्रकृतांग - 1/9/3*

काम-भोग आरम्भ-समारम्भ से भरे हुए ही होते हैं। इसलिए वे दु ख-विमोचक नहीं हो सकते हैं।

377. आत्मघातक

जसं किर्त्ति सिलोगं च जा य वंदण-पूयणा ।
सव्वलोयंसि जे कामा, विज्जं परिजाणिया ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ 2703]

– *सूत्रकृतांग - 1/9/22*

यश-कीर्ति प्रशंसा, वंदन-पूजन और संसार के जितने भी काम-भोग हैं, विद्वान् साधक, आत्मघातक समझकर उन सबका परित्याग करें।

378. धर्म-विरुद्ध वचन

वैधादीयं च णो वदे ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2703]

– *सूत्रकृतांग - 1/9/1*

धर्म के विरुद्ध मत बोलो।

379. मर्मघातक वाणी

णेय वंफेज्ज मम्मयं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2704]

– *सूत्रकृतांग - 1/9/25*

मर्मघाती वचन मत बोलो।

380. बोल, तराजू तोल

अणुबिति वियागरे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2704]

— ***सूत्रकृतांग 1/9/25***

जो कुछ भी बोले विचारकर बोले ।

381. गोप्य, गुप्त

जं छन्नं तं न वत्तव्वं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2704]

— ***सूत्रकृतांग 1/9/26***

किसी की कोई गोपनीय बात हो, तो नहीं कहना चाहिए ।

382. अभद्र, वचन

तुमं तुमंति अमणुण्ण, सव्वसो तं ण वत्तए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2704]

— ***सूत्रकृतांग - 1/9/27***

तू-तू जैसे अभद्र शब्द कभी किसी भी रूप से नहीं बोलना चाहिए ।

383. हँसो, मर्यादित

नातिवेलं हसे मुणी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2704]

— ***सूत्रकृतांग 1/9/29***

मुनि को मर्यादा से अधिक नहीं हँसना चाहिए ।

384. बोलो, पर बीचमें नहीं !

भासमाणो न भासेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2704]

— ***सूत्रकृतांग 1/9/25***

किसी बोलते हुए के बीच में मत बोलो ।

385. सम्बोधन-विवक

होलावायं सहीवायं, गोतावायं च नो वदे ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2704]

– *सूत्रकृतांग - 1/9/27*

साधु निष्ठुर या नीच सम्बोधन से किसी को पुकार कर होलावाद न करें । सखी, मित्र आदि कहकर सम्बोधित करके सखीवाद न करें तथा गोत्र का नाम लेकर (चाटुकारिता की दृष्टि से) किसी को पुकार कर गोत्रवाद न बोलें ।

386. कुशील-असंसर्ग

अकुसीले सया भिक्खू णोय संसग्गियं भए ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2704]

– *सूत्रकृतांग - 1/9/28*

श्रमण अकुशील बनकर रहे और कुशील जनों (दुराचारियों) के साथ संसर्ग न रखे ।

387. हिए तराजू तोल

जं वदित्ताऽणुतप्पती ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2704]

– *सूत्रकृतांग - 1/9/26*

बोलने के बाद पछताना पड़े, ऐसी बात भी मत कहो ।

388. कष्ट-सहिष्णु मुनि

चरियाए अप्पमत्तो, पुट्ठो तत्थऽहियासते ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2704]

– *सूत्रकृतांग - 1/9/30*

साधु-चर्या में अप्रमत्तशील होता हुआ मुनि उसके (चारित्र) मार्ग में आनेवाले उपसर्गों को धैर्य के साथ सहन करता रहे ।

389. छल-कपट-त्याग

मातिट्ठाणं विवज्जेजा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2704]

— ***सूत्रकृतांग - 1/9/25***

छल-कपट के स्थान को छोड़ो।

390. साधक मृदु

वुच्चमाणो न संजले ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2705]

— ***सूत्रकृतांग 1/9/31***

साधक को यदि कोई दुर्वचन भी कहे तो वह उस पर क्रोध न करे, गरम न हो।

391. काम-अनभ्यर्थना

लद्धे कामे ण पत्थेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2705]

— ***सूत्रकृतांग - 1/9/32***

साधक भोगों के प्राप्त होने पर भी उनकी वाँछा न करें, स्वागत न करें।

392. साधक सहिष्णुता

सुमणो अहियासेज्जा णय कोलाहलं करे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2705]

— ***सूत्रकृतांग - 1/9/31***

साधक को जो भी कष्ट हो, प्रसन्न मन से सहन करें। कोलाहल न करें।

393. विवेक ही धर्म

[विवेगेधम्म माहिए] विवेगे एस माहिए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2705]

— ***सूत्रकृतांग - 1/9/32***

विवेक में ही धर्म है।

394. आर्य-धर्म-शिक्षा

आरियाइं सिक्खेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2705]

— ***सूत्रकृतांग - 1/9/32***

श्रमण आचार्यों (ज्ञानीजनों) के निकट रहकर सदा आर्य-धर्म कर्तव्य अथवा आचरणीय धर्म सीखें ।

395. साधक अक्रुद्ध

हम्ममाणो न कुप्पेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2705]

— ***सूत्रकृतांग - 1/9/31***

प्रहार करनेवाले पर साधक क्रुद्ध न हो ।

396. समाधिज्ञ

जे दूमण तेहि णो णया, ते जाणंति समाहिमाहियं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2706]

— ***सूत्रकृतांग - 1/2/2/27***

जो शब्दादि इन्द्रियों के विषय में प्रविष्ट नहीं हुए हैं, वे आत्मस्थित पुरुष ही समाधि को जानते हैं ।

397. अपराजित धर्म

कुजए अपराजिए जहा, अक्खेहिं कुसलेहिं दिव्वयं ।
कडमेव गहाय णो कलिं, जो तेयं नो चेव दावरं ॥
एवं लोगम्मि ताइणा, बुइएऽयं धम्मे अणुत्तरे ।
तं गिण्हं हितं ति उत्तमं, कडमिव सेसऽव हाय पंडिए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2706]

— ***सूत्रकृतांग - 1/2/2/23-24***

जुआ खेलने में जुआरी जैसे कुशल पाशों से खेलता हुआ 'कृत' नाम के पाशे को ही अपनाकर अपराजित रहता है । शेष अन्य कलि, द्वापर और त्रेता इन तीन पाशों को वह नहीं अपनाता है अर्थात् उनसे नहीं खेलता है । वैसे ही पंडित पुरुष भी, इसलोक में जगत्राता सर्वज्ञोंने जो उत्तम और अनुत्तर धर्म कहा है; उसे अपने हित के लिए ग्रहण करें । शेष सभी धर्मों को उसीप्रकार छोड़ दें, जिसतरह कुशल जुआरी 'कृत' पाशे के अतिरिक्त अन्य सभी पाशों को छोड़ देता है; क्योंकि वही धर्म हितकर और उत्तम है ।

398. ममता-मुक्त

णच्चा धम्मं अणुत्तरं, कय किरिए ण यावि मामए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2706]

— ***सूत्रकृतांग - 1/2/2/28***

उत्तम धर्म को समझकर क्रिया करते हुए व्यक्ति को ममत्त्वभाव नहीं रखना चाहिए ।

399. दुर्लभ अवसर

आयहियं खु दुहेण लब्भई ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2707]

— ***सूत्रकृतांग 1/2/2/30***

आत्म-हित का अवसर कठिनाई से मिलता है ।

400. क्रोधमान-त्याग

कोहं माणं न पत्थए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2707]

— ***सूत्रकृतांग 1/11/35***

क्रोध-मान की इच्छा मत करो ।

401. संसार पार कौन ?

गुरूणो छंदाणुवत्तगा, विरयातिन्नमहोधमाहिय ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2707]

— ***सूत्रकृतांग - 1/2/2/32***

यह संसार महान् प्रवाह रूप समुद्र है और इसे गुर्वाज्ञानुसार चलनेवाले और पापों से दूर रहनेवालों ने ही पार किया है ।

402. कषाय-त्याग

छण्णं य पसंसणो करे, न य उक्कासपगास माहणे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2707]

— ***सूत्रकृतांग - 1/2/2/29***

विवेकी पुरुष माया और लोभ तथा मान और क्रोध नहीं करे ।

403. कर्म-फल

सुचिणा कम्मा सुचिणफला भवंति ।
दुच्चिणा कम्मा दुच्चिणफला भवंति ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2711]
– *औपपातिक सूत्र 56*

अच्छे कर्म का फल अच्छा होना है और बुरे कर्म का फल बुरा होना है।

404. आत्म-रमण

जे अणण्णदंसी से अणण्णारामे ।
जे अणण्णारामे, से अणण्णदंसी ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2712]
– *आचारांग - 1/2/6/101*

जो अनन्य को देखता है वह अनन्य में रमण करता है।
जो अनन्य में रमण करता है, वह अनन्य को देखता है।

405. कुशल पुरुष

कुसले पुण णो बद्धे णो मुक्के ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2712]
– *आचारांग 1/2/6/104*

कुशल पुरुष न बद्ध है और न मुक्त ।

406. कैसा वीर प्रशंसनीय ?

एस वीरे पसंसिए अच्चेति लोगसंजोगं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2712]
– *आचारांग - 1/2/6/10*

वही वीर पुरुष सर्वत्र प्रशंसा प्राप्त करता है, जो लोग-संयोग (धन परिवारादि प्रपंचों) से मुक्त हो जाता है।

407. काम-भाग

बाले पुण निहे काम समणुण्णे असमित दुक्खे दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्टं अणुपरियट्टति ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2712]
एवं [भाग 6 पृ. 732]
– *आचारांग* - *1/2/3/80*

अज्ञानी पुरुष स्नेहवान् और काम-भोग प्रिय होकर दु:ख का शमन नहीं कर पाता। वह दु:खी होता हुआ दु:खों के चक्र में ही भ्रमण करता है।

408. वीरसाधक

न लिप्पति छणपदेण वीरे ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2712]
– *आचारांग* - *1/2/6/103*

वीरपुरुष हिंसा-स्थान से लिप्त नहीं होता ।

409. संयमधन से हीन मुनि

दुव्वसु मुणी अणाणाए ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2712]
– *आचारांग* - *1/2/6/100*

जो मुनि जिनाज्ञा का पालन नहीं करता, वह संयम-धन से रहित है, दरिद्र है ।

410. मुक्त-मोचक

संखाय धम्मं च वियागरेंति, बुद्धा हु ते अंतकरा भवंति ।
ते पारगा दोण्हवि मोयणाए, संसोधितं पण्हमुदाहरंति ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2712]
– *सूत्रकृतांग 1/14/18*

जो धर्म को अच्छी तरह समझकर फिर व्याख्यान या उपदेश करते हैं, वे ज्ञानी संसार का अन्त करते हैं। वे स्वयं मुक्त होकर दूसरों को भी मुक्त करनेवाले हैं, क्योंकि वे प्रश्नों का संशोधित उत्तर देते हैं ।

411. मेधावी कौन ?

से मेधावी जे अणुग्घातणस्स
खेतण्णे जे य बंधप्पमोक्खमण्णेसी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2712]
— ***आचारांग - 1/2/6/104***

जो कर्मों के बंधन से मुक्त होने की खोज करता है तथा जो अहिंसा के समग्र मार्ग को जान लेता है, वह मेधावी है।

412. निःस्पृह उपदेशक

जहा पुण्णस्स कत्थति, तहा तुच्छस्स कत्थति ।
जहा तुच्छस्स कत्थति, तहा पुण्णस्स कत्थति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2712]
— ***आचारांग - 1/2/6/102***

निःस्पृह धर्मोपदेशक जैसे पुण्यवान् (सम्पन्न व्यक्ति) को उपदेश देता है, वैसे ही विपन्न (दीन-दरिद्र व्यक्ति) को भी उपदेश देता है। जैसे विपन्न को उपदेश देता है, वैसे ही सम्पन्न को भी देता है।

413. किसको, किससे भय ?

जहा कुक्कुडपोयस्स, निच्चं कुललओ भयं ।
एवं खु बंभयारिस्स, इत्थी विग्गहओ भयं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2713]
— ***दशवैकालिक 8/53***

जैसे मुर्गी के बच्चे को बिल्ली द्वारा प्राणहरण का सदा भय बना रहता है, वैसे ही ब्रह्मचारी को स्त्री के शरीर से भय बना रहता है।

414. प्रणीताहार, तालपुटविष

विभूसा इत्थि संसग्गी, पणीयरसभोयणं ।
नरस्सऽत्तगवेसिस्स, विसं तालउडं जहा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2713]
— ***दशवैकालिक - 8/56***

आत्म-शोधक मनुष्य के लिए शरीर का श्रृंगार, स्त्रियों का संसर्ग और पौष्टिक-स्वादिष्ट भोजन-ये सब तालपुट विष के समान महान् भयंकर है ।

415. दृष्टि-संहरण

चित्तभित्तिं न निज्झाए, नारिं वा सुअलंकियं ।
भक्खरं पिवद्दूणं दिट्ठिं पडिसमाहरे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2713]
— ***दशवैकालिक*** *- 8/54*

साधु चित्र-भित्ति (स्त्रियों के चित्रों से चित्रित दीवार) को अथवा सुसज्जित नारी को टक-टकी लगाकर न देखें । कदाचित् सहसा उस पर दृष्टि पड़ जाए तो वह दृष्टि तुरन्त वैसे ही वापस हटा लें जैसे (मध्याह्नकालीन) सूर्य पर पड़ी हुई दृष्टि हटा ली जाती है ।

416. भाव-प्रतिलेखन

किं कयं किं वा सेसं, किं करणिज्जं तवं न करेमि ।
पुव्वावरत्तकाले, जागरओ भावपडिलेह त्ति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2715]
— ***धर्मबिन्दु सटीक*** *5/71 [1]*

मैंने क्या किया, क्या करना शेष है; और करने योग्य कौन-सा तप नहीं करता हूँ ? इसप्रकार प्रात:काल उठकर भाव प्रतिलेखन करे ।

417. धर्म-द्वार

चत्तारि धम्मदारा पण्णता-तंजहा-खंती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2719]
— ***स्थानांग*** *- 4/4/4/372*

क्षमा, संतोष, सरलता और नम्रता-ये चार धर्म के द्वार हैं ।

418. शास्त्र, सर्वार्थ साधक

शास्त्रं सर्वार्थसाधनम् ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2720]
एवं [भाग 7 पृ. 334]
– *योगबिन्दु – 225*

शास्त्र इहलौकिक-पारलौकिक सभी प्रयोजनों का साधक है ।

419. शास्त्र, औषधि

पापाऽऽमयौषधं शास्त्रं ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2720]
– *योगबिन्दु - 225*

शास्त्र पापरूपी रोग के लिए औषधि है ।

420. शास्त्र, जल

मलिनस्य यथाऽत्यन्तं, जलं वस्त्रस्य शोधनम् ।
अन्तःकरणरत्नस्य, तथा शास्त्रं विदुर्बुधाः ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2720]
एवं [भाग 7 पृ. 335]
– *योगबिन्दु 229*

जैसे मैला वस्त्र जल द्वारा धोए जाने पर अत्यन्त स्वच्छ हो जाता है; वैसे ही अन्त:करण की स्वच्छता शास्त्र द्वारा होती है। ऐसा ज्ञानी पुरुष मानते हैं ।

421. शास्त्र-आदर

उपदेशं विनाऽप्यर्थ, कामौ प्रति पटुर्जनः ।
धर्मस्तु न विना शास्त्रादिति तत्राऽऽदरो हितः ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2720]
– *योगबिन्दु 222*

अर्थ और काम में मनुष्य बिना उपदेश के भी निपुण होता है; किन्तु धर्मज्ञान शास्त्र के बिना नहीं होता। अत: शास्त्र के प्रति आदर रखना मनुष्य के लिए बड़ा हितकर है।

422. शास्त्र, ज्योति

लोके मोहान्धकारेऽस्मिन् शास्त्रालोकः प्रवर्तकः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2720]

— *योगबिन्दु 224*

इस लोक के मोहरूपी अन्धकार को दूर करने के लिए शास्त्र ही दीपक (ज्योति) है और वही उसे हेय-उपादेय वस्तु को बतानेवाला एवं सही मार्ग पर ले जानेवाला प्रकाश है।

423. अन्धप्रेक्षा तुल्य क्रिया

न यस्य भक्तिरेतस्मिँस्तस्य धर्मक्रियाऽपिहि ।
अन्धप्रेक्षा क्रिया तुल्या कर्मदोषादसत्फला ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2720]

— *योगबिन्दु 226*

जिसकी शास्त्र में श्रद्धा-भक्ति नहीं है, उसके द्वारा आचरित धर्मक्रिया भी कर्म-दोष के कारण उत्तम फल नहीं देती। वह अंधे मनुष्य की प्रेक्षा-क्रिया के उपक्रम जैसी है। अंधा देखने का प्रयत्न करने पर भी कुछ देख नहीं पाता। यही स्थिति उस क्रिया की है। अन्धे के पास नेत्र नहीं है; और शास्त्र-भक्ति शून्य पुरुष के पास शास्त्र से प्राप्त ज्ञान-चक्षु नहीं है। इसतरह दोनों एक अपेक्षा से समान ही है।

424. शास्त्र-अनादर

यस्य त्वनादरः शास्त्रे तस्य श्रद्धादयो गुणाः ।
उन्मत्तगुणतुल्य त्वान्न; प्रशंसास्पदं सताम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2720]

— *योगबिन्दु - 228*

जिसका शास्त्र के प्रति अनादर है; उसके श्रद्धा, व्रत, त्याग, प्रत्याख्यान आदि गुण एक पागल अथवा भूत-प्रेत आदि द्वारा ग्रस्त उन्मादी पुरुष के गुण जैसे हैं। वे सत्पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय नहीं हैं।

425. मुक्ति-दूतीः शास्त्र-भक्ति

शास्त्रे भक्ति जंगदवन्द्यैः मुक्ते र्दूती परोदिता ।
अत्रैवेयं मतो न्याय्या, तत्प्राप्त्यासन्नभावतः ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2720]
– ***योगबिन्दु 230***

शास्त्र-भक्ति मानो मुक्ति की दूती है, अर्थात् आत्मा रूपी प्रेमी-आशिक तथा मुक्ति रूपी प्रेमिका-माशूका का मिलन कराने में, आत्मा को मुक्ति का संयोग कराने में वह सन्देशवाहिनी का कार्य करती है। मुक्ति का सन्देश आत्मा तक पहुँचाती है; जिससे आत्मा में मुक्ति को प्राप्त करने की उत्कण्ठा बढ़ती है।

426. धर्म-देशना

नोपकारो जगत्यस्मिंस्तादृशो विद्यते क्वचित् ।
यादृशी दुःखविच्छेदा-देहिनो धर्मदेशना ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2720]
– ***धर्मबिन्दु 2/80 एवं धर्मसंग्रह 1/27***

इस संसार में धर्मदेशना, प्राणियों के दुःख का उन्मूलन करने में जो उपकार करती है, वैसा जगत् में अन्य कोई उपकार नहीं करता।

427. पुण्य निबन्धन

शास्त्रं पुण्यनिबन्धनम् ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2720]
एवं [भाग 7 पृ. 334]
– ***योगबिन्दु 225***

शास्त्र पुण्य-बन्ध का हेतु है-पुण्य कार्यों में प्रेरक है।

428. शास्त्रः आँख

चक्षुः सर्वत्रगं शास्त्रम् ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2720]
– ***योगबिन्दु 225***

शास्त्र सब जगह पहुँचनेवाली तीसरी आँख है।

429. जिनवचन से सर्वार्थ-सिद्धि

अस्मिन् हृदयस्थे सति, हृदयस्थस्तत्त्वतो मुनीन्द्र इति ।
हृदयेस्थिते च तस्मिन्, नियमात् सर्वार्थसंसिद्धिः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2722]

— ***धर्मबिन्दु 5/74 (1)***

जब तीर्थंकरवचन हृदय में है तो वास्तव में तीर्थंकर भगवन्त स्वयं हृदय में विराजमान है । जब तीर्थंकर प्रभु ही साक्षात् हृदय में है, तब निश्चय ही सकल अर्थ की सिद्धि होती ही है ।

430. धर्म-विशुद्धि

एगा धम्मपडिमा, जं से आया पज्जवजाए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2723]

— ***स्थानांग - 1/1/30***

एक धर्म ही ऐसा पवित्र अनुष्ठान है; जिससे आत्मा की विशुद्धि होती है ।

431. मोक्ष

जया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ।
तया लोगमत्थयत्थो, सिद्धो भवइ सासओ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2724]

— ***दशवैकालिक - 4/48***

जब आत्मा समस्त कर्मों को क्षयकर सर्वथा मलरहित सिद्धि को पा लेती है; तब वह लोक के मस्तक पर स्थित होकर सदा के लिए सिद्ध हो जाती है ।

432. मुक्ति

जया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ।
तया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2724]

— ***दशवैकालिक - 4/47***

जब आत्मा मन-वचन और काया के योगों का निरोध कर शैलेशी अवस्था को प्राप्त करती है, तब वह कर्मों का क्षयकर सर्वथा मलरहित होकर मोक्ष पाती है।

433. संयम, पारसमणि

जया संवर मुक्किट्ठं; धम्मं फासे अणुत्तरं।
तया धुणइ कम्मरयं, अबोहि कलुसं कडं॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2724]
— *दशवैकालिक - 4/43*

जब साधक उत्कृष्ट संयमरूपी धर्म का स्पर्श करता है, तब आत्मा पर लगी हुई मिथ्यात्व-जनित कर्म-रज को झाड़ कर दूर कर देता है।

434. अपरिग्रही साधक

जया निव्विंदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे।
तया चयइ संजोगं, सब्भितर बाहिरं॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2724]
— *दशवैकालिक - 4/40*

जब मनुष्य दैविक और मानुषिक भोगों से विरक्त हो जाता हैं तब वह बाह्याभ्यन्तर परिग्रह को छोड़कर आत्म-साधना में जुट जाता है।

435. उत्कृष्ट संयमधारक

जया मुंडे भवित्ताणं, पव्वइए अणगारियं।
तया संवर मुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2724]
— *दशवैकालिक 4/42*

जब साधक सिर मुंडवाकर अणगार धर्म को स्वीकार करता है, तब वह उत्कृष्ट संयम रूपी धर्म का आचरण कर सकता है।

436. सिद्ध शाश्वत

सिद्धो भवइ सासओ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2724]

— *दशवैकालिक 4/48*

सिद्धावस्था शाश्वत होती है ।

437. मुक्ति सुलभ

परीसहे जिणंतस्स, सुलहा सोग्गइ तारिसगस्स ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2725]

— *दशवैकालिक 4/50*

जो साधक परिषहों पर विजय पाता है, उसके लिए मोक्ष सुलभ है ।

438. स्वर्गगामी कौन ?

पच्छा वि ते पयाया, खिप्पं गच्छंति अमरभवणाइं ।
जेसिं पिओ तओ, संजमो य, खंती य बंभचेरं च ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2725]

— *दशवैकालिक 4/50*

जिन्हें तप, संयम, क्षमा और ब्रह्मचर्य प्रिय हैं, वे शीघ्र ही देवलोक में जाते हैं । फिर वे भले ही पिछली अवस्था में क्यों न प्रव्रजित हुए हो ?

439. धर्मरत्न दुर्लभ

जह चिंतामणिरयणं, सुलहं न हु होइ तुच्छ विहया ।
गुणविहववज्जियाणं, जियाणं तह धम्मरयणंपि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2726]

— *धर्मरत्नप्रकरण-3*

जैसे धनहीन मनुष्यों को चिंतामणिरत्न मिलना सुलभ नहीं है, वैसे ही गुणरूपी धन से रहित जीवों को धर्मरत्न भी नहीं मिल सकता ।

440. दुर्लभ सद्धर्म

भवजलहिम्मि अपारे, दुलहं मणुयत्तणं वि जंतूणं ।
तत्थवि अणत्थहरणं, दुलहं सद्धम्मवररयणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2726]

— *धर्मरत्नप्रकरण-2*

अपार संसार रूप सागर में (भटकते) जन्तुओं को मनुष्यत्व मिलना दुर्लभ है, उसमें भी अनर्थ को हरनेवाला सद्धर्मरूपी रत्न मिलना और भी दुर्लभ है ।

441. धर्म, अर्थ-काम-मोक्षदायक

धनदो धनार्थिनां धर्म्मः कामदः सर्वकामिनाम् ।
धर्म एवाऽपवर्गस्य, पारम्पर्येण साधकः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2731]
— ***धर्मबिन्दु 1/2***

धर्म, धन चाहनेवाले प्राणियों को धन देता है, काम चाहनेवाले को काम देता है और परम्परा से मोक्ष को देनेवाला भी एकमात्र धर्म ही है ।

442. मन्दबुद्धि

धर्म बीजं परं प्राप्य, मानुष्यं कर्मभूमिषु ।
न सत्कर्म कृषावस्य प्रयतन्तेऽल्पमेधसः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2731]
— ***योगदृष्टि समुच्चय - 83***

कर्मभूमि में उत्तम धर्मबीज रूप मनुष्यजीवन प्राप्त कर मन्दबुद्धि पुरुष सत्कर्म रूपी खेती करने में प्रयत्न नहीं करते अर्थात् दुर्लभ मनुष्य जीवन का सत्कर्म करने में उपयोग नहीं करते ।

443. सज्जन-प्रशंसा

वपनं धर्मबीजस्य, सत्प्रशंसादितद्गतम् ।
तच्चिन्ताद्यङ्कुरादि स्यात्, फलसिद्धिस्तु निर्वृत्तिः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2431]
— ***धर्मबिन्दु 2/1***

सत्पुरुष की प्रशंसा करना, यह धर्मबीज का आरोपण है । धर्म-चिन्तन आदि उसके अङ्कुर है और मोक्ष उसकी फल-सिद्धि है ।

444. धर्मानुकूल आजीविका

धम्मेणं चेव विर्त्ति कप्पेमाणा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2731]

— *सूत्रकृतांग - 2/2/39*

सद्गृहस्थ धर्मानुकूल ही आजीविका करते हैं।

445. पौद्गलिक सुख-विरक्ति

धम्मसद्दाएणं साया-सोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2732]

— *उत्तराध्ययन - 29/5*

धर्म पर दृढश्रद्धा हो जाने से जीवात्मा शातावेदनीयजनित पौद्गलिक सुखों की आसक्ति से विरक्त हो जाती है।

446. दशधा धर्म

संयमः सुनृतं शौचं, ब्रह्माकिञ्चनता तपः ।
क्षान्तिर्मार्दवमृजुता, क्षान्तिश्च दशधा ननु ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2734]

— *धर्मसंग्रह - 3*

संयम, सत्य, शौच, ब्रह्मचर्य, अकिंचनता, तप, क्षान्ति, सरलता, ऋजुता और क्षमा-ये धर्म के दस लक्षण हैं।

447. तत्त्वद्रष्टा

अण्णहा णं पासए परिहरेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2737]

— *आचारांग - 1/2/5/89*

तत्त्वद्रष्टा (वस्तुओंका) उपभोग-परिभोग अन्यथा दृष्टिकोण अर्थात् भिन्न दृष्टि से करें।

448. महामुनि कौन ?

सव्वगेहिं परिण्णाय, एस पणत्ते महामुणी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2760]

— *आचारांग - 1/6/2/184*

समग्र आसक्ति को छोड़कर समर्पित होनेवाला महामुनि होता है।

449. कष्ट सहिष्णु

चेच्चा सव्वं विसोत्तियं फासे समियदंसिणे ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2760]

– *आचारांग - 1/6/2/185*

सम्यग्दर्शी सब प्रकार की चैतसिक चंचलताओं अथवा शंकाओं को छोड़कर कष्टों को समभाव से सहे ।

450. ज्ञानी, कर्मक्षय

आयाणिज्जं परिण्णाय परियाएणं विगिंचति ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2761]

– *आचारांग - 1/6/2/185*

ज्ञानी, कर्म-बंध अर्थात् आस्रव और बंध का स्वरूप जानकर पर्याय द्वारा उन्हें दूर करता है ।

451. शरणभूत धर्म

जहा से दीवे असंदीणे, एवं से धम्मे आयरियपदेसिए ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2761-62]

– *आचारांग - 1/6/3/189*

जैसे-समुद्र के मध्य में शरणभूत द्वीप है, वैसे ही संसार-समुद्र में अरिहंतों द्वारा उपदिष्ट यह धर्म शरणभूत है ।

452. क्लेश

पाणापाणे किलेसंति ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2761]

– *आचारांग - 1/6/1/180*

प्राणी ही प्राणियों को क्लेश पहुँचाते हैं ।

453. दर्शन-ज्ञान ध्वंसी

णाणब्भट्ठा दंसण लूसिणो ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2763]

– *आचारांग - 1/6/4/191*

जो ज्ञानभ्रष्ट और दर्शन के विध्वंसक साधक हैं, वे स्वयं तो भ्रष्ट होते ही हैं। साथ ही दूसरों को भी भ्रष्ट करके सन्मार्ग से विचलित कर देते हैं।

454. नत, फिर भी ध्वस्त

णममाणा वेगे जीवितं विप्परिणामेंति ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2763]

– आचारांग - 1/6/4/191

साधक जिनाज्ञा-गुर्वाज्ञा के प्रति समर्पित होते हुए भी, संयमी जीवन को ध्वस्त कर देते हैं, बिगाड़ देते हैं।

455. सुखी जीवन, संयमभ्रष्ट

पुट्ठा वेगे नियट्टंति जीवितस्सेव कारणा ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2763]

– आचारांग 1/6/4/191

कुछ साधक कष्ट उपस्थित हो जाने पर केवल सुखी जीवन जीने के लिए संयम छोड़ बैठते हैं।

456. निष्क्रमण भी दुर्निष्क्रमण

निक्खंतं पि तेसिं दुण्णिक्खंतं भवति ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2763]

– आचारांग - 1/6/4/191

संयम छोड़ देनेवाले मुनियों का गृहवास से निष्क्रमण भी दुर्निष्क्रमण हो जाता है।

457. धर्म-मार्ग दुष्कर

घोरे धम्मे ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 4 पृ. 2764]

– आचारांग - 1/6/4/192

धर्म का मार्ग बहुत ही कठिन है।

458. आज्ञातिक्रमण

उवेह इणं अणाणाए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2764]

— ***आचारांग - 1/6/4/***

तू जिनाज्ञा का अतिक्रमण कर धर्म की उपेक्षा कर रहा है।

459. मेधावी

मेधावी जाणेज्जा धम्मं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2764]

— ***आचारांग - 1/6/4/191***

बुद्धिमान् पुरुष अपने धर्म को भलीभाँति जाने-पहचाने।

460. कायरजन

वसट्टा कायरा जणा लूसगा भवन्ति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2764]

— ***आचारांग 1/6/4/193***

विषय वशवर्ती कायर जन व्रतों के विध्वंसक हो जाते हैं।

461. अज्ञ द्वारा निन्दनीय

बाल वयणिज्जा हु ते णरा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2764]

— ***आचारांग - 1/6/4/191***

संयम-भ्रष्ट पुरुष साधारणजनों (अज्ञजनों) के द्वारा भी निन्दनीय हो जाते हैं।

462. विषयाक्रान्त

गंथेहिं गढिता णरा विसण्णा कामक्कंता ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2766]

— ***आचारांग 1/6/5/198***

धन-धान्यादि वस्तुओं में आसक्त और विषयों में निमग्न मनुष्य काम से आक्रान्त होते हैं।

463. आसक्ति

तम्हा संगं ति पासहा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2766]

— *आचारांग - 1/6/5/198*

विषय-कषाय को शान्त करने के लिए तुम आसक्ति को देखो।

464. संग्राम-शीर्ष

कायस्स वियावाए एस संगाम सीसे
वियाहिए से हु पारंगमे मुणी।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2766]

— *आचारांग - 1/6/5/198*

शरीर के व्यापात को अर्थात् मृत्यु समय की पीड़ा को ही संग्रामशीर्ष (युद्ध का अग्रिम मोर्चा) कहा गया है, जो मुनि उसमें समाधि मरण प्राप्त कर विजयी होता है अर्थात् हार नहीं खाता है, वही संसार का पारगामी होता है।

465. सच्चा साधक

से वंता कोहं च माणं च मायं च लोभं च।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2766]

— *आचारांग - 1/3/4/128*

वह सत्यार्थी साधक, क्रोध, मान, माया और लोभ का शीघ्र ही त्याग कर देता हैं।

466. संयमलीन

अबहिल्लेसे परिव्वए।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2766]

— *आचारांग - 1/6/5/197*

संयम में लीनं मुनि अशुभ अध्यवसायों को छोड़कर विचरण करें।

467. दृष्टिमान् साधक

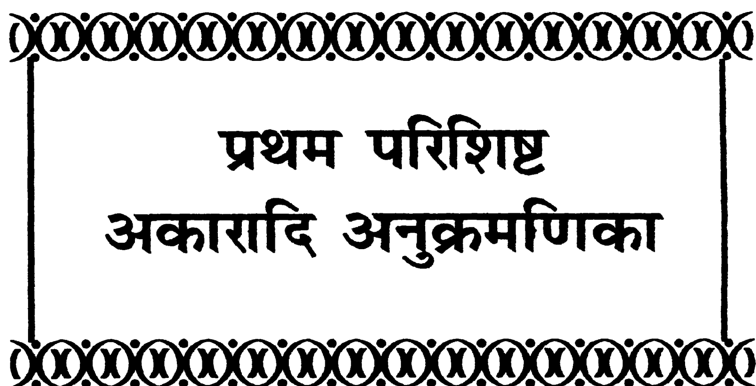
संखाय पेसलं धम्मं दिट्ठिमं परिणिव्वुडे।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 4 पृ. 2766]

— *आचारांग - 1/6/5/197*

सम्यग् दृष्टिमान् साधक पवित्र उत्तम धर्म को जानकर विषय-कषायों को शान्त करे ।





प्रथम परिशिष्ट
अकारादि अनुक्रमणिका

अकारादि अनुक्रमणिका

[illegible]	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
244.	अस्थिरे हृदये चित्रा ।	4	2410
247.	अन्तर्गतं महाशल्य ।	4	2410
267.	अभउत्ति धम्ममूलं ।	4	2489
276.	अत्तकडे दुक्खे ।	4	2550
293.	अहीण पंचेंदियता हु दुल्लहो ।	4	2570
335.	अकरणिज्जं पावकम्मं ।	4	2675
361.	अगिलाए धम्ममाइक्खेज्जा ।	4	2694
370.	अन्ने हरंति तं वित्तं ।	4	2701
380.	अणुबिति वियागरे ।	4	2704
386.	अकुसीले सया भिक्खू ।	4	2704
429.	अस्मिन् हृदयस्थे सति ।	4	2722
447.	अण्णहा णं पासए परिहरेज्जा ।	4	2737
466.	अबहिल्लेसे परिव्वए ।	4	2766
	आ		
199.	आनुस्रोतसिकी वृत्ति ।	4	2202
280.	आयतुलं पाणेहिं संजते ।	4	2551
351.	आयादर्द्धे नियुञ्जीत ।	4	2683
376.	आरम्भ संभियाकामा ।	4	2701
394.	आरियाइं सिक्खेज्जा ।	4	2705
399.	आयहियं खु दुहेण लब्भई ।	4	2707
450.	आयाणिज्जं परिण्णाय ।	4	2761
	इ		
95.	इच्छा हु आगाससमा अणंतिया ।	4	1817
133.	इह भविए वि नाणे ।	4	1982
173.	इहलोगे सुचिन्ना कम्मा ।	4	2134
174.	इहलोगे सुचिन्ना कम्मा ।	4	2134
328.	इमेण चेव जुज्झाहि ।	4	2674
	उ		
30.	उवलेवो होइ भोगेसु ।	4	1422
106.	उदधाविव सर्व सिंधवः ।	4	1885-1898
109.	उप्पज्जंति वयंति अ ।	4	1889

सूक्ति क्रमांक	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
137.	उभाभ्यामेवपक्षाभ्यां ।	4	1985
167.	उड्ढं निरोहे कोढं ।	4	2116
294.	उत्तमधम्म सुई हु दुल्लहा ।	4	2570
331.	उवेहमाणे पत्तेय सातं वण्णादेसी।	4	2674
356.	उक्किट्ठं मंगलं धम्मो ।	4	2689
421.	उपदेशं विनाऽप्यर्थ ।	4	2720
458.	उवेहइणं अणाणाए ।	4	2764

ए

5.	एते तु जातिदेशकालसमया ।	4	1391
29.	एवं लग्गंति दुम्मेहा जे नरा ।	4	1422
41.	एगंत सुहावहा जयणा ।	4	1423
117.	एगे नाणे ।	4	1938
231.	एकाहारी दर्शनधारी ।	4	2246
262.	एग दव्वस्सिया गुणा ।	4	2463
406.	एस वीरे पसंसिए ।	4	2712
430.	एगा धम्मपडिमा ।	4	2723

क

15.	कम्मुणा बम्भणो होइ ।	4	1421
21.	कम्माणि बलवन्ति हि ।	4	1421
40.	कहं चरे ? कहं चिट्ठे ?	4	1423
51.	कत्थ व न जलइ अग्गी ।	4	1464
139.	कर्मणा बध्यते जन्तुः ।	4	1986
310.	कलहकरो डमरकरो ।	4	2601

का

98.	कामे पत्थेमाणा ।	4	1818
99.	कामा आसी विसोवमा ।	4	1818
308.	कालं अणवकंखमाणो विहरइ ।	4	2598
464.	कायस्स वियावाए एस संगाम ।	4	2766

कु

22.	कुसचीरेण न तावसो ।	4	1421
72.	कुण्ठीभवन्ति तीक्ष्णानि ।	4	1634

सूक्ति क्रमांक	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
397.	कुजए अपराजिए जहा ।	4	2706
405.	कुसले पुण णो बद्धे णो मुक्के ।	4	2712
	को		
19.	कोहा वा जइ वा हासा ।	4	1421
53.	को नाम सारहीणं स होई ।	4	1468
226.	कोहंमि उ निग्गहिए ।	4	2242
400.	कोहं माणं न पत्थए ।	4	2707
	किं		
73.	किं चान्यद् योगतः स्थैर्यं ।	4	1636
88.	किं ते जुज्झेण बज्झओ ।	4	1815
416.	किं कयं किं वा सेसं ।	4	2715
	खे		
305.	खेमं च सिवं अणुत्तरं ।	4	2573
	ग		
77.	गतानुगतिकाः प्रायो ।	4	1798
	गा		
292.	गाढा य विवाग कम्मुणो ।	4	2570
	गि		
271.	गिहिणो वेयावडियं, न कुज्जा ।	4	2496
	गु		
260.	गुणाणमासओ दव्वं ।	4	2463
401.	गुरुणो छंदाणुवत्तगा ।	4	2707
	गं		
462.	गंथेहिं गढिता णरा ।	4	2766
	ग्रा		
187.	ग्रामाऽऽरामादि मोहाय ।	4	2182
	घो		
457.	घोरे धम्मे ।	4	2764
	च		
234.	चउहिं ठाणेहिं जीवा तिरिक्ख ।	4	2318
388.	चरियाए अप्पमत्तो ।	4	2704

सूक्ति क्रमांक	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
360.	णो अन्नस्स हेउं ।	4	2694
	त		
10.	तसे पाणे वियाणित्ता ।	4	1420
12.	तवस्सियं किसं दन्तं ।	4	1420
26.	तवेण होइ तावसो ।	4	1421
36.	तव वुड्ढिकरी जयणा ।	4	1423
71.	तथा च जन्मबीजाग्नि ।	4	1634
81.	तवनारायजुत्तेणं भेत्तूणं ।	4	1814
110.	तम्हा सव्वेवि णया।	4	1891
179.	तमातो ते तमं जंति।	4	2172
198.	तदेव हि तपः कार्यं ।	4	2202
206.	तवेणं वोयाणं जणयइ ।	4	2205
209.	तपश्च त्रिविधं ज्ञेयं ।	4	2205
215.	तवसूरा अणगारा ।	4	2207
216.	तवसा धुणइ पुराण पावगं ।	4	2207
264.	तपसा सर्वाणि सिद्ध्यन्ति ।	4	2489
309.	तओ दुसन्नप्पा पन्नत्ता-तं जहा-दुट्ठे।	4	2600
312.	ततो ठाणाटं देवे पीहेज्जा ।	4	2607
463.	तम्हा संगं ति पासहा ।	4	2766
	ता		
190.	तात्त्विकस्य समं पात्रं ।	4	2183
193.	तापयति अष्ट प्रकारं कर्म इति तपः ।	4	2199
	ति		
112.	तिव्वाभितावे नराए पडंति ।	4	1917
304.	तिण्णो हु सि अन्नवं महं।	4	2573
	तु		
382.	तुमं तुमंति अमणुण्ण ।	4	2704
	ते		
273.	ते धन्ना कयपुन्ना।	4	2508
	तं		

सूक्ति क्रमांक	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	दे		
207.	देवद्विज गुरुप्राज्ञ ।	4	2205
	दो		
141.	दोहिं ठाणेहिं संपन्ने अणगारे ।	4	1988
	दं		
255.	दंसणसम्पन्नयाएणं जीवे ।	4	2435
	दुः		
221	दुःखरूपोभवः सर्व ।	4	2227
	द्र		
2.	द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञाः ।	4	1389
105.	द्रव्यपर्यायवियुतं ।	4	1860
	ध		
11.	धम्माणं कासवो मुहं ।	4	1420
194.	धनार्थिनां यथा नास्ति ।	4	2202
263.	धम्मो अहम्मो आकासं ।	4	2463
296.	धम्मंपिह सद्दहंतया ।	4	2571
316.	धर्मश्चित्तप्रभवो ।	4	2666
339.	धर्मवित्ता हि साधवः ।	4	2676
346.	धम्मो ताणं, धम्मो सरणं ।	4	2680
348.	धम्मो मंगल मुक्किट्ठं ।	4	2683
352.	धम्मो गुणा अहिंसा ।	4	2685
441.	धनदो धनार्थिन धर्म्मः ।	4	2731
442.	धर्मबीजं परं प्राप्य ।	4	2731
444.	धम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा ।	4	2731
445.	धम्मसद्धाएणं साया-सोक्खेसु ।	4	2732
	धि		
357.	धिग्धर्मरहितं नरम् ।	4	2690
	न		
13.	नवि मुंडिएण समणो ।	4	1421
18.	न तं तायन्ति दुस्सीलं ।	4	1421

सूक्ति नम्बर	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
23.	न ओंकारेण बंभणो ।	4	1421
24.	न मुणी रण्णवासेणं ।	4	1421
107.	नत्थि नएहिं विहुणं सुत्तं ।	4	1887-1899
111.	नयास्तव स्यात् पदलांछना ।	4	1898
143.	न नाणमित्तेण कज्ज निफ्फत्ती ।	4	1989
177.	नय वित्तासए परं ।	4	2147
181.	नत्थि पुण्णे व पावे वा ।	4	2172
186.	न विकाराय विश्वस्योपकारायैव ।	4	2182
212.	नऽन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तप महिट्ठेज्जा ।	4	2206
258.	न तद्दानं न तद्ध्यानं ।	4	2457
408.	न लिप्पति छणपदेण वीरे ।	4	2712
423.	न यस्य भक्तिरेतस्मिँस्तस्य ।	4	2720
	ना		
25.	नाणेण य मुणी होइ ।	4	1421
121.	नाणा फलाभावाओ ।	4	1945
140.	नाणं किरियारहियं ।	4	1988
145.	नाणसंपन्नेणं जीवे चाउरंते ।	4	1993
147.	नाण संपन्नयाएणं जीवे ।	4	1993
150.	नाणाहियस्स नाणं पुइज्जइ ।	4	1996
172.	नाहं पुद्गलभावानां ।	4	2117
368.	नाणागमो मच्चुमुहस्स अत्थि ।	4	2697
383.	नातिवेलं हसे मुणी ।	4	2704
	नि		
130.	निर्वाण पदमप्येकं ।	4	1980
131.	निर्भयः शक्रवद्योगी ।	4	1980
151.	निपानमिव मण्डूकाः ।	4	2003
153.	निन्दणयाएणं पच्छाणुतावं जणयइ ।	4	2018
162.	नियमाः शौचसन्तोषौ ।	4	2093
175.	निव्वएणं दिव्वं माणुस ।	4	2134
256.	निस्संकिय निक्कंखिय ।	4	2436
373.	निम्ममो निरहंकारो ।	4	2701

सूक्ति क्रमांक	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
279.	निव्विदेज्जा सिलोग पूयणं ।	4	2551
456.	निक्खंतं पि तेसिं ।	4	2763
	ने		
43.	नेरइया सुत्ता नो जागरा ।	4	1446
340.	नेहलोके सुखं किञ्चिद् ।	4	2676
	नो		
201.	नो पूयणं तवसा आवहेज्जा ।	4	2204
213.	नो इह लोगट्ठयाए तवमहिट्ठेज्जा ।	4	2206
214.	नो कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए ।	4	2206
426.	नोपकारो जगत्यस्मिंस्तादृशो ।	4	2720
	प		
152.	पच्छाणुतावेणं विरज्जमाणे ।	4	2018
281.	परदुक्खेण दुक्खिआ विरला ।	4	2552
321.	परहित चिन्तामैत्री ।	4	2672
322.	परदुःखविनाशिनी ।	4	2672
323.	परदोपोपेक्षणमुपेक्षा ।	4	2672
324.	परसुखतुष्टिर्मुदिता ।	4	2672
375.	परिग्गहे निविट्ठाणं ।	4	2701
437.	परीसहे जिणंतस्स ।	4	2725
438.	पच्छावि ते पयाया ।	4	2725
	पा		
113.	पावाइं कम्माइं करेंति रूद्दा ।	4	1917
349.	पापेनैवार्थ रागान्धः ।	4	2683
350.	पादमायान्निधिं कुर्यात् ।	4	2683
419.	पापाऽऽमयौषधं शास्त्रं ।	4	2720
452.	पाणापाणे किलेसंति ।	4	2761
	पि		
79.	पियं न विज्जई किंचि ।	4	1813
	पी		
125.	पीयूषमसमुद्रोत्थं ।	4	1980

सूक्ति क्रमांक	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	मे		
459.	मेधावी जाणेज्जा धम्मं ।	4	2764
	मो		
66.	मोक्षहेतुर्यतो योगो ।	4	1618
68.	मोक्षेण योजनाद् योगः ।	4	1625
	य		
74.	यम-नियमाऽऽसन ।	4	1638
196.	यत्र ब्रह्म जिनार्चा च ।	4	2202
257.	यत्नादपि परक्लेशं ।	4	2456
424.	यस्य त्वनादरः शास्त्रे ।	4	2720
	या		
223.	या शान्तैकरसा स्वादाद् ।	4	2241
	यो		
64.	योगः कर्मसु कौशलम् ।	4	1613
67.	योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।	4	1621
70.	योगः कल्पतरूः श्रेष्ठो ।	4	1634
	यः		
320.	यः समः सर्वभूतेषु ।	4	2669
	रा		
192.	राईभोयण विरओ ।	4	2199
254.	राई सरिसव मित्ताणि ।	4	2433
	रू		
189.	रूपे रूपवती दृष्टि ।	4	2182
242.	रूहिरकयस्स वत्थस्स रूहिरेण चेव ।	4	2401
	ल		
161.	लज्जा गुणौघ जननीमिव स्वाम ।	4	2092
261.	लक्खण पज्जवाणं तु उभओ ।	4	2463
288.	लद्धूण वि माणुसत्तणं ।	4	2570
289.	लद्धूण वि उत्तमं सुइं ।	4	2570
391.	लद्धे कामे ण पत्थेज्जा ।	4	2705

सूक्ति क्रमांक	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	ला		
184.	लावण्य लहरीपुण्यं वपुः ।	4	2182
	लि		
168.	लिप्यते पुद्गलस्कन्धो ।	4	2117
169.	लिप्तताज्ञानसम्पात ।	4	2117
	लो		
102.	लोहाओ दुहओ भयं ।	4	1818
422.	लोके मोहान्धकारेऽस्मिन् ।	4	2720
	व		
158.	वयणं विन्नाण फलं।	4	2074
248.	वत्स ! किं चंचलस्वान्तो।	4	2410
315.	वचनादविरुद्धाद्यदनुष्ठानं यथोदितम् ।	4	2665
355.	वयं च विर्त्ति लब्भामो ।	4	2688
369.	वरं प्रवेष्टुं ज्वलितं हुताशनम् ।	4	2700
443.	वपनं धर्मबीजस्य ।	4	2731
460.	वसट्टा कायरा जणा लूसगा भवन्ति ।	4	2764
	वा		
132.	वादाँश्च प्रतिवादाँश्च ।	4	1980
	वि		
31.	विरत्ता उ न लग्गंति ।	4	1422-2699
84.	विगइ संगामो भवाओ परिमुच्चई ।	4	1814
100.	विसं कामा ।	4	1818
104.	विणियट्टन्ति भोगेसु ।	4	1819
123.	विषयप्रतिभासाख्यं ।	4	1978
128.	विणएण लहइ नाणं ।	4	1980
211.	विविहगुण तवो रए य निच्चं ।	4	2206
218.	वित्तं पसवो य तं वाले ।	4	2220
229.	विषयोर्मि विषोद्गारः ।	4	2242
241.	विणयमूले धम्मे पण्णत्ते ।	4	2401
285.	विहुणाहि रयं पुरे कडं ।	4	2569

[illegible]	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	सा		
159.	सामाइओ वउत्तो ।	4	2076
235.	सायं गवेसमाणा ।	4	2344
317.	सादियं ण मुसं बूया ।	4	2666
	सि		
252.	सिज्झंति चरणरहिया ।	4	2430
436.	सिद्धो भवइ सासओ ।	4	2724
	सु		
46.	सुअइ सुअंतस्स सुअं संकिअ।	4	1447
47.	सुवइ य अजगरभूओ।	4	1447
52.	सुक्किं धणम्मि दिप्पइ।	4	1464
93.	सुवण्ण-रूप्पस्स उ पव्वया भवे।	4	1817
157.	सुह पडिबोहा निद्दा........ ।	4	2072
228.	सुखिनो विषयैस्तृप्ता ।	4	2242
253.	सुहिओ हु जणो ण बुज्झइ ।	4	2432
392.	सुमणो अहिया सेज्जा ।	4	2705
403.	सुचिणा कम्मा सुचिणफला भवंति ।	4	2711
	से		
232.	से पुव्वं पेयं पच्छा पेतं भेउर धम्मं।	4	2262
295.	से सव्वबले य हायई ।	4	2571
297.	से घाणबले य हायई ।	4	2571
298.	से जिब्भबले य हायई ।	4	2571
299.	से फासबले य हायई ।	4	2571
300.	से चक्खुबले य हायई ।	4	2571
301.	से सोयबले य हायई ।	4	2571
411.	से मेधावी जे अणुग्घातमस्स ।	4	2712
465.	से वंता कोहं च माणं च ।	4	2766
	सो		
200.	सो हु तवो कायव्वो ।	4	2204
	सं		
80.	संसयं खलु जो कुणइ ।	4	1814

क्रमांक	सूक्ति का अंश	भाग	पृष्ठ
142.	संजोग सिद्धीइ फलं वयंति ।	4	1988
170.	संसारे निवसन् स्वार्थसज्जः ।	4	2117
176.	संकाभीओ न गच्छेज्जा ।	4	2147
220.	संतोषादनुत्तम सुख-लाभः ।	4	2226
224.	संसारे स्वप्नन्मिथ्या तृप्तिः ।	4	2242
270.	संसर्गजा दोषगुणाभवन्ति ।	4	2493
290.	संसरइ सुभासुभेहिं कम्मेहिं ।	4	2570
307.	संतिमग्गं च बूहए ।	4	2573
334.	संजमति नो पगब्भति ।	4	2674
342.	संबुज्झह किं न बुज्झह ।	4	2677
344.	संबोही खलुपेच्च दुल्लभा ।	4	2677
410.	संखाय धम्मं च वियागरेंति।	4	2712
446.	संयमः सुनृतं शौचं ।	4	2734
467.	संखाय पेसलं धम्मं दिट्ठिमं ।	4	2766
	स्		
135.	स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य ।	4	1985
134.	स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः ।	4	1985
	श		
282.	शकटं पञ्चहस्तेन ।	4	2555
	शा		
205.	शारीराद्वाङ्गमयं सारं ।	4	2205
418.	शास्त्र सर्वार्थसाधनम् ।	4	2720
425.	शास्त्रे भक्तिर्जगदवन्द्यैः ।	4	2720
427.	शास्त्रं पुण्यनिबन्धनम् ।	4	2720
	शौ		
219.	शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर।	4	2226
	ह		
395.	हम्ममाणो न कुप्पेज्जा ।	4	2705
	हो		
385.	होलावायं सहीवायं ।	4	2704

ज्ञा




द्वितीय परिशिष्ट
विषयानुक्रमणिका

विषयानुक्रमणिका

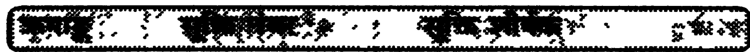
[illegible]	[illegible]	[illegible]
57	342	उठ, जाग मुसाफिर !
58	356	उत्कृष्ट मंगल
59	358	उपेक्षा किसकी नहीं ?
60	435	उत्कृष्ट संयम साधक
	ए	
61	140	एकान्त क्या ?
	अं	
62	313	अंधे को दर्पण
63	423	अंधप्रेक्षा तुल्य क्रिया
	क	
64	15	कर्म से वर्ण
65	21	कर्म बलवान्
66	64	कर्म कौशल
67	69	कर्मफल
68	83	कर्मयुद्ध
69	94	कबहु धापे नाय
70	97	कषाय-परिणाम
71	135	कर्म से सिद्धि
72	139	कर्म से बन्धन, ज्ञान से मुक्ति
73	210	कर्म-निर्जराकांक्षी
74	177	कर्तव्य
75	277	कर्म
76	285	कर्म-रज की सफाई
77	292	कर्म-विपाक
78	310	कलह से असमाधि
79	322	करुणा
80	370	करे कौन ? भरे कौन ?
81	388	कष्टसहिष्णु मुनि
82	402	कषाय-त्याग
83	403	कर्म-फल
84	449	कष्टसहिष्णु







151	216	तप से कर्म नष्ट
152	250	तत्त्व-जागृति
153	264	तप: अमोघ
154	447	तत्त्वद्रष्टा
		ता
155	22	तापस नहीं
156	190	तात्त्विक सर्वोत्कृष्ट
157	191	तात्त्विक श्रेष्ठ
158	208	तामस तप
		तृ
159	93	तृष्णा, सुरसा का मुँह
		द
160	101	दम्भ-परिणाम
161	157	दर्शनावरणीय-प्रकार
162	252	दर्शन-भ्रष्ट की मुक्ति नहीं
163	256	दर्शन अष्टाचार
164	257	दया
165	266	दया, धर्म का मूल
166	446	दशधा-धर्म
167	453	दर्शन-ज्ञानध्वंसी
		दा
168	268	दान: एक वशीकरण मंत्र
		दि
169	37	दिनचर्या ऐसी हो ?
170	40	दिनचर्या कैसी हो ?
		दु
171	18	दुश्चरित्री, अशरण
172	87	दुर्जेय आत्मा
173	254	दुर्जन प्रकृति
174	287	दुर्लभ क्या ?





[illegible]	[illegible]	[illegible]
324	305	मोक्ष
325	431	मोक्ष
	मौ	
326	178	मौन पूर्वक क्या करें ?
	य	
327	1	यज्ञ-प्रकार
328	39	यतना
329	41	यतना, सुखदायिनी
330	77	यथा राजा, तथा प्रजा
331	115	यथा कर्म, तथा भार
332	290	यथा कर्म
	यु	
333	328	युद्ध, विकारों से
	यो	
334	66	योग, मोक्ष-हेतु
335	67	योग-लक्षण
336	68	योगाचार
337	70	योगसर्वस्व
338	71	योग-शक्ति
339	72	योग माहात्म्य
340	73	योग-लाभ
341	74	योगाङ्ग
342	75	योगसत्य
343	219	योग-नियम
	रा	
344	203	राजस तप
	रौ	
345	113	रौद्रपरिणामी
	लो	
346	61	लोकालोक स्वरूप





तृतीय परिशिष्ट
अभिधान राजेन्द्रः
पृष्ठ संख्या
अनुक्रमणिका
भाग-४

अभिधान राजेन्द्रः पृष्ठ संख्या अनुक्रमणिका

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	भाग-4
1	1389	
2	1389	
3	1390	
4	1391	
5	1391	
6	1415	
7	1417	
8	1420	
9	1420	
10	1420	
11	1420	
12	1420	
13	1421	
14	1421	
15	1421	
16	1421	
17	1421	
18	1421	
19	1421	
20	1421	
21	1421	
22	1421	
23	1421	
24	1421	
25	1421	
26	1421	
27	1421	
28	1421	
29	1422 एवं 2699	
30	1422	
31	1422 एवं 2699	
32	1422	
33	1422	
34	1422	
35	1422	
36	1423	
37	1423	
38	1423	
39	1423	
40	1423	
41	1423	
42	1445	
43	1446	
44	1447	
45	1447	
46	1447	
47	1447	
48	1447–48	
49	1447	
50	1448	
51	1464	
52	1464	
53	1468	
54	1471	
55	1478	
56	1502	
57	1503	
58	1519–1520	
59	1536	
60	1561 एवं भाग 5 में पृ. 1190	
61	1561	
62	1565	
63	1566	
64	1613	
65	1617	
66	1618	
67	1621	
68	1625	
69	1633	
70	1634	
71	1634	
72	1634	
73	1636	
74	1638	
75	1650	

भाग-४

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या
76	1673
77	1798
78	1811
79	1813
80	1814
81	1814
82	1814
83	1814
84	1814
85	1815
86	1815
87	1815
88	1815
89	1815
90	1815
91	1816
92	1816
93	1817
94	1817
95	1817
96	1818
97	1818
98	1818
99	1818
100	1818
101	1818
102	1818
103	1818
104	1819
105	1860
106	1885 एवं 1898
107	1887 एवं 1899
108	1889
109	1889
110	1891
111	1898
112	1917
113	1917
114	1920
115	1921
116	1932
117	1938
118	1939
119	1939 एवं भाग 7 पृ. 511
120	1940
121	1945
122	1949
123	1978 एवं भाग 7 पृ. 805
124	1980
125	1980
126	1980
127	1980
128	1980
129	1980
130	1980
131	1980
132	1980
133	1982
134	1985
135	1985
136	1985
137	1985
138	1986
139	1986
140	1988
141	1988
142	1988 एवं भाग 6 पृ. 443
143	1989
144	1990
145	1993
146	1993
147	1993
148	1995
149	1996
150	1996
151	2003
152	2018
153	2018
154	2057 एवं भाग 7 पृ. 165

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या
155	2070
156	2070
157	2072
158	2074
159	2076
160	2080
161	2092
162	2093
163	2108 एवं भाग 5 पृ. 1514 एवं भाग 7 पृ. 225
164	2109
165	2116
166	2116
167	2116 एवं भाग 7 पृ. 178
168	2117
169	2117
170	2117
171	2117
172	2117
173	2134
174	2134
175	2134
176	2147
177	2147
178	2162
179	2172
180	2172
181	2172
182	2173
183	2182
184	2182
185	2182
186	2182
187	2182
188	2182
189	2182
190	2183
191	2183
192	2199
193	2199
194	2202
195	2202
196	2202
197	2202
198	2202
199	2202
200	2204
201	2204
202	2005
203	2205
204	2205
205	2205
206	2205
207	2205
208	2205
209	2205
210	2206
211	2206
212	2206
213	2206
214	2206
215	2207
216	2207
217	2213
218	2220
219	2226
220	2226
221	2227
222	2241
223	2241
224	2242
225	2242
226	2242
227	2242
228	2242
229	2242
230	2246
231	2246

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	भाग-4
232	2262	
233	2295	
234	2318	
235	2344	
236	2344	
237	2345	
238	2346	
239	2346	
240	2385	
241	2401	
242	2401	
243	2403	
244	2410	
245	2410	
246	2410	
247	2410	
248	2410	
249	2419	
250	2429	
251	2429	
252	2430	
253	2432	
254	2433	
255	2435	
256	2436	
257	2456	
258	2457 एवं भाग 5 पृ. 151	
259	2457	
260	2463	
261	2463	
262	2463	
263	2463	
264	2489	
265	2489	
266	2489	
267	2489	
268	2490	
269	2490	
270	2493	

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	[illegible]
271	2496	
272	2499	
273	2508	
274	2549	
275	2550	
276	2550	
277	2550	
278	2551	
279	2551	
280	2551	
281	2552	
282	2555	
283	2559	
284	2569	
285	2569	
286	2569	
287	2570	
288	2570	
289	2570	
290	2570	
291	2570	
292	2570	
293	2570	
294	2570	
295	2571	
296	2571	
297	2571	
298	2571	
299	2571	
300	2571	
301	2571	
302	2572	
303	2572	
304	2573	
305	2573	
306	2573	
307	2573	
308	2598	
309	2600	
310	2601	
311	2601	

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	भाग-4
312	2607	
313	2630	
314	2645	
315	2665	
316	2666	
317	2666	
318	2667-2669	
319	2667	
320	2669	
321	2672	
322	2672	
323	2672	
324	2672	
325	2673	
326	2673	
327	2674	
328	2674	
329	2674	
330	2674	
331	2674	
332	2674	
333	2674	
334	2674	
335	2675	
336	2675	
337	2676	
338	2676	
339	2676	
340	2676	
341	2676	
342	2677	
343	2677	
344	2677	
345	2677	
346	2680	
347	2680	
348	2683	
349	2683	
350	2683	
351	2683	
352	2685	
353	2688	
354	2688	
355	2688	
356	2689	
357	2690	
358	2693	
359	2693	
360	2694	
361	2694	
362	2694	
363	2696	
364	2697 एवं भाग 7 पृ. 489	
365	2697	
366	2697	
367	2697	
368	2697 एवं भाग 6 पृ. 59	
369	2700	
370	2701	
371	2701	
372	2701	
373	2701	
374	2701	
375	2701	
376	2701	
377	2703	
378	2703	
379	2704	
380	2704	
381	2704	
382	2704	
383	2704	
384	2704	
385	2704	
386	2704	
387	2704	
388	2704	
389	2704	
390	2705	
391	2705	
392	2705	

[illegible]	[illegible]
393	2705
394	2705
395	2705
396	2706
397	2706
398	2706
399	2707
400	2707
401	2707
402	2707
403	2711
404	2712
405	2712
406	2712
407	2712 एवं भाग 6 पृ. 732
408	2712
409	2712
410	2712
411	2712
412	2712
413	2713
414	2713
415	2713
416	2715
417	2719
418	2720 एवं भाग 7 पृ. 334
419	2720
420	2720 एवं भाग 7 पृ. 335
421	2720
422	2720
423	2720
424	2720
425	2720
426	2720
427	2720 एवं भाग 7 पृ. 334
428	2720
429	2722
430	2723
431	2724
432	2724
433	2724
434	2724
435	2724
436	2724
437	2725
438	2725
439	2726
440	2726
441	2731
442	2731
443	2731
444	2731
445	2732
446	2734
447	2737
448	2760
449	2760
450	2761
451	2761–62
452	2761
453	2763
454	2763
455	2763
456	2763
457	2764
458	2764
459	2764
460	2764
461	2764
462	2766
463	2766
464	2766
465	2766
466	2766
467	2766

●●●●●●●●●●

चतुर्थ परिशिष्ट

जैन एवं जैनेतर ग्रन्थः

अध्ययन/गाथा/श्लोकादि

अनुक्रमणिका

[illegible]

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
1	320	2/26 पृ. 2

आचारांग सूत्र

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
2	237	1/1/4/33
3	238	1/1/4/33
4	239	1/1/4/33
5	407	1/2/3/80
6	447	1/2/5/89
7	409	1/2/6/100
8	404	1/2/6/101
9	406	1/2/6/101
10	412	1/2/6/102
11	408	1/2/6/103
12	405	1/2/6/104
13	411	1/2/6/104
14	465	1/3/4/128
15	164	1/3/4/130
16	364	1/4/2/126
17	368	1/4/2/131
18	366	1/4/2/134
19	365	1/4/2/139
20	367	1/4/2/139
21	232	1/5/1/153
22	333	1/5/3/58
23	325	1/5/3/158
24	329	1/5/3/158
25	330	1/5/3/158
26	327	1/5/3/159
27	328	1/5/3/159
28	332	1/5/3/159
29	331	1/5/3/160
30	334	1/5/3/160
31	335	1/5/3/160
32	336	1/5/3/161
33	452	1/6/1/180
34	448	1/6/2/184
35	449	1/6/2/185
36	450	1/6/2/185
37	451	1/6/3/189
38	458	1/6/4/-
39	453	1/6/4/191
40	454	1/6/4/191
41	455	1/6/4/191
42	456	1/6/4/191
43	459	1/6/4/191
44	461	1/6/4/191
45	457	1/6/4/192
46	460	1/6/4/193
47	358	1/6/5/197
48	359	1/6/5/197
49	466	1/6/5/197
50	467	1/6/5/197
51	462	1/6/5/198
52	463	1/6/5/198
53	464	1/6/5/198

आचारांग निर्युक्ति

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
54	235	94
55	236	96

आवश्यक कथा

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
56	311	

आवश्यक निर्युक्ति

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
57	142	102
58	310	2/1087
59	143	3/1157
60	144	3/1160
61	250	3/1169
62	249	4/1282

आवश्यक मलयगिरि

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
63	340	1/2
64	193	2/1

उत्तराध्ययन सूत्र

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
65	177	2/22
66	176	2/23
67	314	4/2
68	78	9/3
69	79	9/15
70	83	9/20-21-22
71	81	9/22
72	84	9/22
73	80	9/26

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
74	82	9/26
75	85	9/34
76	88	9/35
77	89	9/35
78	90	9/35
79	86	9/36
80	87	9/36
81	91	9/40
82	92	9/44
83	93	9/48
84	95	9/48
85	94	9/49
86	96	9/53
87	98	9/53
88	99	9/53
89	100	9/53
90	97	9/54
91	101	9/54
92	102	9/54
93	103	9/54
94	104	9/62
95	284	10/1
96	285	10/3
97	286	10/3
98	287	10/4
99	290	10/15
100	291	10/15
101	288	10/16
102	292	10/17
103	293	10/17
104	294	10/18
105	289	10/19
106	296	10/20
107	301	10/21
108	300	10/22
109	297	10/23
110	298	10/24
111	299	10/25
112	295	10/26
113	302	10/28
114	304	10/34
115	305	10/35

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
116	306	10/36
117	307	10/36
118	303	16/29
119	11	25/16
120	8	25/20
121	9	25/21
122	12	25/22
123	10	25/22
124	19	25/24
125	20	25/25
126	16	25/26
127	28	25/27
128	17	25/28
129	18	25/30
130	21	25/30
131	13	25/31
132	22	25/31
133	23	25/31
134	24	25/31
135	14	25/32
136	25	25/32
137	26	25/32
138	27	25/32
139	15	25/33
140	30	25/41
141	32	25/41
142	33	25/41
143	34	25/41
144	29	25/43
145	31	25/43
146	260	28/6
147	261	28/6
148	262	28/6
149	263	28/7
150	256	28/31
151	206	29/28
152	175	29/4
153	445	29/5
154	153	29/7
155	152	29/8
156	240	29/16
157	75	29/54

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
158	146	29/60/1
159	145	29/61
160	147	29/61
161	255	29/62
162	192	30/2
163	61	36/2
164	56	36/260

उत्तराध्ययन निर्युक्ति

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
165	253	135
166	254	140

उत्तराध्ययन सूत्र सटीक

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
167	77	9

उपासकदशांग सूत्र

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
168	308	1/14

ओघनिर्युक्ति

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
169	165	197
170	167	197

औपपातिक सूत्र

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
171	403	56

कुमारपाल प्रबन्ध

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
172	205	2

चंद्रवेध्यक प्रकीर्णक

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
173	126	62
174	128	62

चाणक्य नीतिशास्त्र

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि	
175	282	7	7

जीवानुशासन सटीक

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
176	149	16
177	150	16

तत्त्वार्थ सूत्र

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
178	251	1/1

तंदुलवैचारिक प्रकीर्णक

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
179	346	171
180	347	172

[illegible]

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
181	326	2/1

दशवैकालिक सूत्र

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
182	348	1/1
183	353	1/3
184	355	1/4
185	354	1/5
186	60	4/13
187	35	4/24
188	40	4/30
189	37	4/31
190	217	4/40
191	434	4/40
192	435	4/42
193	433	4/43
194	432	4/47
195	431	4/48
196	436	4/48
197	437	4/50
198	438	4/50
199	337	8/35
200	413	8/53
201	415	8/54
202	414	8/56
203	211	9/3/10
204	210	9/4/10
205	216	9/4/10
206	214	9/4/515
207	212	9/5/515
208	213	9/5/515

दशवैकालिक निर्युक्ति

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
209	318	1/43

दशवैकालिक सूत्र सटीक

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
210	352	1
211	356	1

द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
212	106	4/15
213	162	22/2
214	123	26/2

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
	[illegible]	
215	69	1/11/[11]
216	155	1/48/[48]
217	441	1/2
218	339	1/51/[51]
219	443	2/1
220	426	2/80
221	429	5/74/[1]
	धर्मबिन्दु सटीक	
222	156	1/48/[48]
223	349	1/7/[4]
224	350	1/25/[19]
225	351	1/25/[20]
226	363	2/33/[87-88]
227	416	5/71[1]
	धर्मरत्न प्रकरण	
228	258	1/14-15
229	268	1/8
230	440	2/-
231	439	3/-
232	259	17/14
	धर्मरत्न प्रकरण सटीक	
233	266	90
234	267	90
	धर्मसंग्रह	
235	315	1
236	270	1/6
237	190	2
238	178	2/126
239	191	2/205
240	273	2/256
241	446	3/-
	[illegible] सटीक	
242	231	2
	निशीथ चूर्णि	
243	160	1
	निशीथ भाष्य	
244	148	22
245	157	133
246	45	5303
247	49	5303
248	46	5304
249	47	5305
250	48	5306
251	44	5307
	[illegible]	
252	161	18
	[illegible]	
253	118	77
	[illegible]	
254	67	1/2
255	74	2/29
256	219	2/32
257	220	2/43
	पंचाशक सटीक	
258	272	2
	[illegible]	
259	42	341/3
	प्राकृत व्याकरण	
260	281	2
	बृहत्कल्प भाष्य	
261	163	1320
262	54	1357
	बृहत्कल्प [illegible] भाष्य	
263	119	1/1
	बृहदावश्यक भाष्य	
264	313	1224
265	51	1245
266	52	1247
267	53	1275
268	55	1331
	भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक	
269	252	66

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
	भगवती सूत्र	
270	133	1/1/10(1)
271	58	6/10/2
272	275	7/1/14
273	277	7/1/15(3)
274	63	8/7/3
275	50	12/2/18(2)
276	7	12/2/19
277	43	16/6/4
278	276	17/4/13
279	3	18/10/18
	भगवद् गीता	
280	64	2/50
281	2	4/28
282	138	4/33
283	207	17/14
284	202	17/15
285	204	17/16
286	208	17/16
287	209	17/17
288	203	17/18
289	134	18/45
290	135	18/46
	महानिशीथ सूत्र	
291	116	4/3
	महानिशीथ चूर्णि	
292	200	14
	महाभारत	
293	139	240/7
	मनुस्मृति	
294	1	3/70
295	274	4/160
	मुण्डकोपनिषद्	
296	136	3/1/5
	योगदर्शन	
297	166	1/12
298	4	2/30
299	5	2/31
	योगदृष्टि समुच्चय	
300	221	47
301	442	83
	योगबिन्दु	
302	66	3
303	70	37
304	71	38
305	72	39
306	73	52-53-54
307	421	222
308	422	224
309	418	225
310	419	225
311	428	225
312	427	225
313	423	226
314	424	228
315	420	229
316	425	230
	योगवाशिष्ठ-वैराग्य प्रकरण	
317	137	1/7
	वाचस्पत्यभिधान (कोश)	
318	6	–
	विशेषावश्यक सूत्र	
319	158	1513
	विशेषावश्यक भाष्य	
320	121	115
321	122	129
322	159	1529
323	107	2277
	समन्तभद्रस्वयंभू स्तोत्र	
324	111	65
	सन्मति तर्क	
325	109	1/11
326	105	1/12
327	108	1/12

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
328	110	1/21
329	140	3/68
330	57	3/69

संघाचार भाष्य

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
331	341	1/1

संबोध सत्तरि

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
332	36	67
333	38	67
334	39	67
335	41	67
336	154	100
337	225	114
338	226	115
339	227	116

संस्तारक प्रकीर्णक

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
340	59	91

सूत्रकृतांग सूत्र

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
341	181	1/1/1/12
342	179	1/1/1/14
343	180	1/1/1/14
344	342	1/2/1/1
345	343	1/2/1/1
346	344	1/2/1/1
347	345	1/2/1/1
348	369	1/2/2
349	397	1/2/2/23-24
350	396	1/2/2/27
351	398	1/2/2/28
352	402	1/2/2/29
353	399	1/2/2/30
354	401	1/2/2/32
355	278	1/2/3/12
356	279	1/2/3/12
357	280	1/2/3/12
358	218	1/2/3/16
359	112	1/5/1/3
360	113	1/5/1/3
361	114	1/5/1/16
362	115	1/5/1/26

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
363	269	1/6/23
364	201	1/7/27
365	317	1/8/19
366	319	1/8/20
367	375	1/9/3
368	376	1/9/3
369	370	1/9/4
370	372	1/9/5
371	373	1/9/6
372	374	1/9/9
373	378	1/9/17
374	377	1/9/22
375	379	1/9/25
376	380	1/9/25
377	384	1/9/25
378	389	1/9/25
379	381	1/9/26
380	387	1/9/26
381	382	1/9/27
382	385	1/9/27
383	386	1/9/28
384	383	1/9/29
385	388	1/9/30
386	390	1/9/31
387	392	1/9/31
388	395	1/9/31
389	391	1/9/32
390	394	1/9/32
391	393	1/9/32
392	338	1/10/9
393	400	1/11/35
394	410	1/14/18
395	62	1/15/4
396	230	1/15/7
397	182	2/1/13
398	360	2/1/13
399	361	2/1/13
400	444	2/2/39

सूत्रकृतांग सूत्र दीपिका

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
401	264	1/12
402	265	1/12

स्थानांग सूत्र

कमांक	सूक्ति कम	अ./उ./गाथादि
403	141	1
404	430	1/1/30
405	117	1/1/35
406	283	2/2/1/49
407	120	2/2/1/60
408	357	3/3
409	312	3/3/3/184
410	309	3/3/4/204
411	173	4/4/2/282(2)
412	174	4/4/2/282(2)
413	215	4/4/3/317
414	417	4/4/4/372
415	234	4/4/4/373

षोडशक प्रकरण

कमांक	सूक्ति कम	अ./उ./गाथादि
416	362	1/2
417	316	3/-
418	321	4/15
419	322	4/15
420	323	4/15
421	324	4/15

हारिभद्रीयाष्टक

कमांक	सूक्ति कम	अ./उ./गाथादि
422	257	24

हारिभद्रीयाष्टक सटीक

कमांक	सूक्ति कम	अ./उ./गाथादि
423	271	2/3

हितोपदेश

कमांक	सूक्ति कम	अ./उ./गाथादि
424	65	1/71
425	151	1/176

ज्ञाताधर्मकथा

कमांक	सूक्ति कम	अ./उ./गाथादि
426	241	1/5
427	242	1/5
428	243	1/5
429	371	1/9/31
430	233	8

ज्ञानसार

कमांक	सूक्ति कम	अ./उ./गाथादि
431	248	3/1
432	245	3/2
433	244	3/3
434	247	3/4
435	246	3/8
436	132	4/36
437	124	5/1
438	127	5/1
439	130	5/2
440	129	5/6
441	131	5/7
442	125	5/8
443	222	10/1
444	223	10/3
445	224	10/4
446	229	10/7
447	228	10/8
448	170	11/1
449	172	11/2
450	168	11/3
451	169	11/4
452	171	11/6
453	189	19/1
454	185	19/2
455	187	19/3
456	183	19/4
457	184	19/5
458	188	19/7
459	186	19/8
460	68	27/1
461	76	30/6-7-8
462	195	31/1
463	199	31/2
464	194	31/3
465	196	31/6
466	198	31/7
467	197	31/8



पञ्चम परिशिष्ट
'सूक्ति-सुधारस'
में प्रयुक्त
संदर्भ-ग्रंथ सूची

१. अध्यात्म कल्पद्रुम
२. आगमीय सूक्तावली
३. आचारांग सूत्र
४. आचारांग निर्युक्ति
५. आवश्यक निर्युक्ति
६. आवश्यक मलयगिरि
७. आवश्यक कथा
८ उत्तराध्ययन सूत्र
९. उत्तराध्ययन निर्युक्ति
१०. उत्तराध्ययन सटीक
११. उपासकदशांग सूत्र
१२. ओघनिर्युक्ति
१३. औपपातिक सूत्र
१४. गच्छाचार पयन्ना
१५. चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक
१६. चाणक्य नीतिशास्त्र
१७. जीवानुशासन सटीक
१८. तन्दुलवेयालिय पयन्ना
१९. तत्त्वार्थ सूत्र
२०. दशाश्रुतस्कंध
२१. दशवैकालिक सूत्र
२२. दशवैकालिक निर्युक्ति
२३. दशवैकालिक सटीक
२४. दर्शनशुद्धि सटीक
२५. द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका सटीक
२६. धर्मबिन्दु
२७. धर्मबिन्दु सटीक
२८. धर्मसंग्रह
२९. धर्मसंग्रह सटीक
३०. धर्मरत्न प्रकरण
३१. धर्मरत्न प्रकरण सटीक
३२. निशीथ चूर्णि
३३. निशीथ भाष्य
३४. नीतिशतक-भर्तृहरि
३५. नंदी सूत्र
३६. पातञ्जल योगदर्शन

३७. पञ्चाशक सटीक विवरण
३८. प्राकृत व्याकरण
३९. बृहत्कल्प भाष्य
४०. बृहत्कल्पवृत्ति भाष्य
४१. बृहदावश्यक भाष्य
४२. भगवती सूत्र
४३. भगवद् गीता
४४. भक्तपरिज्ञा प्रकरण
४५. महानिशीथ सूत्र
४६. महानिशीथ चूर्णि
४७. महाप्रत्याख्यान
४८. महाभारत
४९. मनुस्मृति
५०. मुंडकोपनिषद
५१. योगबिन्दु
५२. योगदृष्टि समुच्चय
५३. योगदर्शन
५४. योगवाशिष्ठ वैराग्य प्रकरण
५५. वाचस्पत्यभिधान (कोश)
५६. विशेषावश्यक सूत्र
५७. विशेषावश्यक भाष्य
५८. समन्तभद्र-स्वयंभूस्तोत्र
५९. सन्मति तर्क
६०. संघाचार भाष्य
६१. सम्बोधसत्तरि
६२. संस्तारक प्रकीर्णक
६३. सूत्रकृतांग सूत्र
६४. सूत्रकृतांग सटीक
६५. सेन प्रश्न
६६. स्थानांग सूत्र
६७. स्याद्वादमंजरी
६८. षोडशक प्रकरण
६९. हारिभद्रीयाष्टक सटीक
७०. हितोपदेश
७१. ज्ञाताधर्मकथा
७२. ज्ञानसाराष्टक

• • • • • • •

विश्वपूज्य प्रणीत
सम्पूर्ण वाङ्मय

विश्वपूज्य प्रणीत सम्पूर्ण वाङ्मय

अभिधान राजेन्द्र कोष [1 से 7 भाग]
अमरकोष (मूल)
अघट कुँवर चौपाई
अष्टाध्यायी
अष्टाह्निका व्याख्यान भाषान्तर
अक्षय तृतीया कथा (संस्कृत)
आवश्यक सूत्रावचूरी टब्बार्थ
उत्तमकुमारोपंन्यास (संस्कृत)
उपदेश रत्नसार गद्य (संस्कृत)
उपदेशमाला (भाषोपदेश)
उपधानविधि
उपयोगी चौवीस प्रकरण (बोल)
उपासकदशाङ्गसूत्र भाषान्तर (बालावबोध)
एक सौ आठ बोल का थोकड़ा
कथासंग्रह पञ्चाख्यानसार
कमलप्रभा शुद्ध रहस्य
कर्त्तुरीप्सिततमं कर्म (श्लोक व्याख्या)
करणकाम धेनुसारिणी
कल्पसूत्र बालावबोध (सविस्तर)
कल्पसूत्रार्थ प्रबोधिनी
कल्याणमन्दिर स्तोत्रवृत्ति (त्रिपाठ)
कल्याण (मन्दिर) स्तोत्र प्रक्रिया टीका
काव्यप्रकाशमूल
कुवलयानन्दकारिका
केसरिया स्तवन
खापरिया तस्कर प्रबन्ध (पद्य)
गच्छाचार पयन्नावृत्ति भाषान्तर
गतिषष्ट्या - सारिणी

ग्रहलाघव
चार (चतुः) कर्मग्रन्थ - अक्षरार्थ
चन्द्रिका - धातुपाठ तरंग (पद्य)
चन्द्रिका व्याकरण (2 वृत्ति)
चैत्यवन्दन चौवीसी
चौमासी देववन्दन विधि
चौवीस जिनस्तुति
चौवीस स्तवन
ज्येष्ठस्थित्यादेशपट्टकम्
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति बीजक (सूची)
जिनोपदेश मंजरी
तत्त्वविवेक
तर्कसंग्रह फक्किका
तेरहपंथी प्रश्नोत्तर विचार
द्वाषष्टिमार्गणा - यन्त्रावली
दशाश्रुतस्कन्ध सूत्रचूर्णी
दीपावली (दिवाली) कल्पसार (गद्य)
दीपमालिका देववन्दन
दीपमालिका कथा (गद्य)
देववंदनमाला
घनसार - अघटकुमार चौपाई
ध्रष्टर चौपाई
धातुपाठ श्लोकबद्ध
धातुतरंग (पद्य)
नवपद ओली देववंदन विधि
नवपद पूजा
नवपद पूजा तथा प्रश्नोत्तर
नीतिशिक्षा द्वय पच्चीसी
पंचसप्तति शतस्थान चतुष्पदी
पंचाख्यान कथासार
पञ्चकल्याणक पूजा

पञ्चमी देववन्दन विधि
पर्यूषणाष्टाह्निका - व्याख्यान भाषान्तर
पाइय सद्दम्बुही कोश (प्राकृत)
पुण्डरीकाध्ययन सज्झाय
प्रक्रिया कौमुदी
प्रभुस्तवन - सुधाकर
प्रमाणनय तत्त्वालोकालंकार
प्रश्नोत्तर पुष्पवाटिका
प्रश्नोत्तर मालिका
प्रज्ञापनोपाङ्गसूत्र सटीक (त्रिपाठ)
प्राकृत व्याकरण विवृत्ति
प्राकृत व्याकरण (व्याकृति) टीका
प्राकृत शब्द रूपावली
बारेव्रत संक्षिप्त टीप
बृहत्संग्रहणीय सूत्र चित्र (टब्बार्थ)
भक्तामर स्तोत्र टीका (पंचपाठ)
भक्तामर (सान्वय - टब्बार्थ)
भयहरण स्तोत्र वृत्ति
भर्त्तरीशतकत्रय
महावीर पंचकल्याणक पूजा
महानिशीथ सूत्र मूल (पंचमाध्ययन)
मर्यादापट्टक
मुनिपति (राजर्षि) चौपाई
रसमञ्जरी काव्य
राजेन्द्र सूर्योदय
लघु संघयणी (मूल)
ललित विस्तरा
वर्णमाला (पाँच कक्का)
वाक्य-प्रकाश
बासठ मार्गणा विचार
विचार - प्रकरण

विहरमाण जिन चतुष्पदी
स्तुति प्रभाकर
स्वरोदयज्ञान - यंत्रावली
सकलैश्वर्य स्तोत्र सटीक
सद्य गाहापयरण (सूक्ति-संग्रह)
सप्ततिशत स्थान-यंत्र
सर्वसंग्रह प्रकरण (प्राकृत गाथा बद्ध)
साधु वैराग्याचार सज्झाय
सारस्वत व्याकरण (3 वृत्ति) भाषा टीका
सारस्वत व्याकरण स्तुबुकार्थ (1 वृत्ति)
सिद्धचक्र पूजा
सिद्धाचल नव्वाणुं यात्रा देववंदन विधि
सिद्धान्त प्रकाश (खण्डनात्मक)
सिद्धान्तसार सागर (बोल-संग्रह)
सिद्धहैम प्राकृत टीका
सिंदूरप्रकर सटीक
सेनप्रश्न बीजक
शंकोद्धार प्रशस्ति व्याख्या
षड् द्रव्य विचार
षड्द्रव्य चर्चा
षडावश्यक अक्षरार्थ
शब्दकौमुदी (श्लोक)
'शब्दाम्बुधि' कोश
शांतिनाथ स्तवन
हीर प्रश्नोत्तर बीजक
हैमलघुप्रक्रिया (व्यंजन संधि)
होलिका प्रबन्ध (गद्य)
होलिका व्याख्यान
त्रैलोक्य दीपिका - यंत्रावली ।



लेखिकाद्वय की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

लेखिकाद्वय की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

१. आचाराङ्ग का नीतिशास्त्रीय अध्ययन (शोध प्रबन्ध)
   लेखिका : डॉ. प्रियदर्शनाश्री, एम. ए. पीएच.डी.

२. आनन्दघन का रहस्यवाद (शोध प्रबन्ध)
   लेखिका : डॉ. सुदर्शनाश्री, एम. ए., पीएच.डी.

३. अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस (प्रथम खण्ड)

४. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति सुधारस (द्वितीय खण्ड)

५. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (तृतीय खण्ड)

६. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (चतुर्थ खण्ड)

७. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (पंचम खण्ड)

८. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (षष्ठम खण्ड)

९. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (सप्तम खण्ड)

१०. **'विश्वपूज्य'** : (श्रीमद्राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ) (अष्टम खण्ड)

११. अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका (नवम खण्ड)

१२. अभिधान राजेन्द्र कोष में, कथा-कुसुम (दशम खण्ड)

१३. राजेन्द्र सूक्ति नवनीत (एकादशम खण्ड)

१४. जिन खोजा तिन पाइयाँ (प्रथम महापुष्प)

१५. जीवन की मुस्कान (द्वितीय महापुष्प)

१६. सुगन्धित-सुमन(FRAGRANT-FLOWERS) (तृतीय महापुष्प)

प्राप्ति स्थान :

श्री मदनराजजी जैन

द्वारा - शा. देवीचन्दजी छगनलालजी

आधुनिक वस्त्र विक्रेता, सदर बाजार,

पो. भीनमाल-३४३०२९

जिला-जालोर (राजस्थान)

☎ (02969) 20132

सुकृत सहयोगिनी बहनें

१. प.पू. राष्ट्रसंत आचार्यदेव श्रीमद् विजयजयन्तसेनसूरीश्वरजी म.सा.के शिष्यरत्न तपस्वी मुनिप्रवर श्री नयरत्न विजयजी म.सा. के वर्षीतप निमित्ते श्रीमती पासुबहन विशनराजजी बाफना, भीनमाल
२. श्रीमती मंजुलादेवी भंवरलालजी चाँदमलजी कानूंगा, भीनमाल
३. श्रीमती लीलादेवी भंवरलालजी पूनमचंदजी कानूंगा, भीनमाल
४. श्रीमती प्यारीदेवी सुमेरमलजी वर्धन, भीनमाल
५. श्रीमती संतोषदेवी कुन्दनमलजी मास्टर, भीनमाल
६. श्रीमती फेन्सीदेवी घेवरचंदजी नाहर, भीनमाल
७. श्रीमती उगमबाई सोहनराजजी वर्धन, भीनमाल
८. श्रीमती मणिदेवी बगदावरमलजी हरण, भीनमाल
९. श्रीमती विजुदेवी जसराजजी बोहरा, भीनमाल
१०. स्वर्गीया श्रीमती बबीदेवी लालचंदजी बाफना, भीनमाल
११. श्रीमती शांतिदेवी बाबूलालजी बाफना, भीनमाल
१२. श्रीमती सवितादेवी दौलतराजजी बाफना, भीनमाल
१३. श्रीमती सोहिनीदेवी पृथ्वीराजजी बाफना, भीनमाल
१४. श्रीमती विमलादेवी कांतिलालजी बाफना, भीनमाल
१५. श्रीमती गीतादेवी गुमानमलजी धोकड़, भीनमाल
१६. श्रीमती मंजुलादेवी पृथ्वीराजजी कावेड़ी, भीनमाल
१७. श्रीमती कंचनदेवी मूलचंदजी कावेड़ी, भीनमाल
१८. श्रीमती शीलादेवी मुकेशजी कावेड़ी, भीनमाल
१९. श्रीमती सीतादेवी भंवरलालजी वर्धन, भीनमाल
२०. श्रीमती मोहिनीदेवी कांतिलालजी वाणीगोता, भीनमाल
२१. श्रीमती कोलीबाई कांतिलालजी वाणीगोता, भीनमाल
२२. श्रीमती कोलीबाई एम. भंवरजी, पालगोता भीनमाल
२३. श्रीमती मंछुबहन पृथ्वीराजजी बोहरा, भीनमाल
२४. श्रीमती बबीबाई सुमेरमलजी बी. नाहर, भीनमाल
२५. श्रीमती शांतिदेवी बाबूलालजी सालेचा, भीनमाल
२६. श्रीमती प्रकाशबहन जामन्तराजजी बाफना,. भीनमाल
२७. श्रीमती भादाबाई देवीचन्दजी जैन, भीनमाल
२८. श्रीमती प्रकाशबहन मदनराजजी जैन, भीनमाल
२९. श्रीमती वादीबाई भभूतमलजी सालेचा, भीनमाल

३०. श्रीमती शान्तिदेवी देवीचन्दजी सालेचा, भीनमाल
३१. श्रीमती ऊषादेवी हीराचंदजी सालेचा, भीनमाल
३२. श्रीमती अनीतादेवी ललितकुमारजी सालेचा, भीनमाल
३३. सी. के. जैन गुरुभक्त, भीनमाल
३४. एम. एम. जैन गुरुभक्त, भीनमाल
३५. श्रीमती सोहिनीदेवी सोहनराजजी बाफना, भीनमाल
३६. श्रीमती भमरीदेवी पुखराजजी शाहजी, भीनमाल
३७. श्रीमती सुकनदेवी उम्मेदमलजी नाहर, भीनमाल
३८. श्रीमती कमलादेवी घेवरचंदजी महेता, भीनमाल
३९. श्रीमती होकीबाई पारसमलजी कोठारी, भीनमाल
४०. श्रीमती चंदनबहन डो. श्रवणकुमारजी मोदी, भीनमाल
४१. श्रीमती शांतिदेवी डुंगरमलजी वर्धन, भीनमाल
४२. श्रीमती विमलादेवी सुरेशकुमारजी वोरा, भीनमाल
४३. श्रीमती सुशीलादेवी प्रेमराजजी वोरा, भीनमाल
४४. श्रीमती उगमबाई जीवाजी पालगोता, भीनमाल
४५. श्रीमती भंवरीदेवी सोहनराजजी मुथा, भीनमाल
४६. श्रीमती पुष्पादेवी राजमलजी धोकड, भीनमाल
४७. श्रीमती छायादेवी मोहनलालजी दोशी, भीनमाल
४८. श्रीमती कमलाबाई सोहनराजजी महेता, भीनमाल
४९. श्रीमती दरियाबाई मोहनलालजी सेठ, भीनमाल
५०. श्रीमती रेशमीबाई मूलचंदजी महेता, भीनमाल
५१. श्रीमती मोहनबाई पुखराजजी बाफना, भीनमाल
५२. श्रीमती जमनाबाई पवनराजजी बाफना, भीनमाल
५३. श्रीमती सोहनीबहन दलीचंदजी संघवी, भीनमाल
५४. श्रीमती शांतिबाई किशोरमलजी लुंकड, भीनमाल
५५. श्रीमती पवनदेवी सुखराजजी महेता, भीनमाल
५६. श्रीमती सुकीदेवी वस्तीमलजी कानूंगा, भीनमाल
५७. श्रीमती दिवाली बाई कपूरचंदजी कानूंगा, भीनमाल
५८. श्रीमती झमकादेवी सांवलचंदजी बाफना, भीनमाल
५९. श्रीमती लासीबाई सुमेरमलजी मुथा, भीनमाल
६०. श्रीमती सुमटीदेवी मनोहरमलजी बोहरा, भीनमाल
६१. श्रीमती विमलादेवी डो. दूदराजजी भीमाणी, भीनमाल

६२. श्रीमती बबीदेवी गुमानमलजी दोशी, भीनमाल
६३. श्रीमती पारुबाई सोमतमलजी दोशी, भीनमाल
६४. श्रीमती सुकीदेवी माणकचन्दजी बाफना, भीनमाल
६५. श्रीमती रेशमीबाई भंवरजी केसाजी मेहता, भीनमाल
६६. श्रीमती पवनबाई पनराजजी सेठ, भीनमाल
६७. श्रीमती सोहिनीदेवी पारसमलजी संघवी, भीनमाल
६८. श्रीमती दरियाबाई घेवरचंदजी मेहता, भीनमाल
६९. श्रीमती शांतिबाई घीसुलालजी हुण्डिया, भीनमाल
७०. श्रीमती प्रकाशबहन हंसराजजी वर्धन, भीनमाल
७१. श्रीमती वीजुबाई भंवरलालजी, मेंगलवा
७२. श्रीमती लासीबाई मास्टर समरथमलजी मुथा, भीनमाल
७३. श्रीमती रतनदेवी (सोमती) भंवरलालजी मुथा, भीनमाल
७४. श्रीमती उमरीबाई किशोरमलजी मुथा, भीनमाल
७५. श्रीमती वसन्तीदेवी देवीचंदजी चंदनगोता, भीनमाल
७६. श्रीमती भंवरीदेवी भंवरलालजी मेहता, भीनमाल
७७. श्रीमती दरियाबाई चैनराजजी बाफना, भीनमाल
७८. श्रीमती शांतिबाई भूदरमलजी दोशी, भीनमाल
७९. स्वर्गीया श्रीमती शांतिदेवी किशोरमलजी मेहता, भीनमाल
८०. श्रीमती झमकादेवी उकचंदजी मुथा, भीनमाल
८१. श्रीमती विमलादेवी गुमानमलजी हस्तीमलजी ठेकेदार*
८२. श्रीमती हुलीदेवी पारसमलजी मेहता, भीनमाल
८३. श्रीमती दरियादेवी रिखबचंदजी भंडारी, भीनमाल
८४. श्रीमती भूरीदेवी वाघाजी वोहरा, भीनमाल
८५. श्रीमती पवनदेवी धनराजजी संघवी, भीनमाल
८६. श्रीमती झमकादेवी सुमेरमलजी सालेचा, भीनमाल
८७. श्रीमती टीपुदेवी उकचन्दजी भणशाली, भीनमाल
८८. श्रीमती गोदावरीदेवी सुमेरमलजी मिश्रीमलजी बाफना, भीनमाल

